...द वार्ता

...र्ष ३० जुलाई, १९८३ संख्या ३

NEW PUBLICATION

ANANDAMAYI MA : THE MOTHER, BLISS INCARNATE

By Anil Ganguli with a Foreword by Dr. Triguna Sen

Introductory

Chapter 1 : Anandamayi Ma, a 'Phenomenon'
Chapter 2 : Ma's 'outer manifestation' : Some phases

PART I

An Extraordinary Life of Light : Some Flashes

Chapter 3 : Early Life (1896-1924)
Chapter 4 : Ma of Shahbag (1924-1932)
Chapter 5 : Mataji of Northern India (1932-1982)
Chapter 6 : Anandamayi Ma's sojourns in Calcutta (1926-1932)

PART II

Kheyal (Divine will working through Ma)

Chapter 7 : *Kheyal* illustrated
Chapter 8 : Mystery of *sadhana* as revealed in Ma
Chapter 9 : Ma and miracles
Chapter 10 : Bird on the wing perennially perched on the nest
Chapter 11 : Ma's compassion and omniscience

PART III

A Fount of Wisdom

Chapter 12 : Ma's teaching : Some gleanings
Chapter 13 : Dialogues and parables
Chapter 14 : Seven Aphorisms of Ma as understood by me

PART IV

The Universal Mother

Chapter 15 : Ma, as an ideal *guru* : *Samyama Vrata*
Chapter 16 : Ma as our 'playmate' in *Nandotsava* (1973)
Chapter 17 : Ma as seen by some admirers
Chapter 18 : Ma as the Universal Mother

Epilogue

Has Ma really left us ?

Price : Rs. 20/- or $ 4.00
or £ 2.00

सत्यमेव जयते

अपनी प्रिय धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रावती देवी

की पुण्य स्मृति में

प्रोफेसर प्राणनाथ

डी० एस सी० द्वारा भेंट ।

आनन्दवार्ता

माँ स्मृति अंक-४

वर्ष ३०] जुलाई, १९८३ [संख्या ३

धर्म के सार्वभौम स्वरूपों एवं श्री आनन्दमयी माँ के उपदेशों और दैवी जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करने वाला त्रैमासिक।

●

●

●

आनन्दवार्ता में माँ के जीवन एवं उपदेशों से सम्बन्धित तथा माँ विषयक व्यक्तिगत अनुभव, चिन्तन, संस्मरण और धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं सन्त-महात्माओं के जीवन पर आधारित लेख आमंत्रित हैं। जहाँ तक सम्भव हो, लेख पृष्ठ के एक ही ओर 'डबल स्पेस' में टंकित होना चाहिए।

वार्षिक सहयोग राशि (डाक व्यय मुक्त)

भारत में—	१५ रुपये	
विदेश में—	समुद्री डाक	हवाई डाक
अमेरिका में—	५ डालर -	१० डालर
अन्य देशों में—	२.५० पौण्ड -	५ पौण्ड

इस प्रति का मूल्य ४·५० रुपये
अथवा
१·५० डालर या ०·७० पौण्ड

ग्राहकों के लिए सूचनाएँ

- 'आनन्दवार्ता' त्रैमासिक पत्रिका है जो हिन्दी, बंगला और अंग्रेजी में अलग-अलग प्रकाशित होती है।
- प्रत्येक संस्करण का वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होता है। वार्षिक चन्दे का अग्रिम १५ दिसम्बर तक प्राप्त होने पर नये वर्ष की सूची में ग्राहकों के नाम दर्ज कर लिये जाते हैं।
- कृपया वार्षिक चन्दा निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें—
- मैनेजर, दी पब्लिकेशन डिवीजन
श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी
३१ एजरा मेन्शन, १० गवर्नमेण्ट प्लेस (ईस्ट)
कलकत्ता-७०००६९
- डाक विभाग की गड़बड़ी से अगर कोई अंक निर्धारित समय पर न प्राप्त हो तो कृपया कार्यालय को सूचित करें।
- यदि आप अपने पते में किसी प्रकार का परिवर्तन करना चाहते हैं तो अविलम्ब सूचना दें।
- वार्षिक चन्दा निर्धारित समय पर प्राप्त होने पर कार्यालय को सुभीता होती है। अगर आप किसी कारण अगले वर्ष ग्राहक नहीं रहना चाहते तो इसकी सूचना अवश्य दें।
- पत्रिका वी० पी० से नहीं भेजी जाती।

श्री श्री आनन्दमयी चैरिटेबल सोसायटी, कलकत्ता की ओर से डॉ० प्रफुल्ल चन्द्र दत्त, पी-एच० डी० द्वारा ३१ एजरा मेन्शन्स, १० गवर्नमेण्ट प्लेस, (ईस्ट) कलकत्ता—६९ से प्रकाशित तथा श्री गोविन्द भार्गव द्वारा, सुलेमानी प्रेस, मछोदरी वाराणसी—१ में मुद्रित।

तुम्हारी चिर परिचित मुस्कान

आनन्दवार्ता के माँ स्मृति अंक का यह चौथा पुष्प आपके सामने है। माँ के भक्तों की उदार कृपा ही हमारा सम्बल है--

'तेरा तुझको सौंपिया का लागा है मोर'

इसे माँ की प्रत्यक्ष कृपा ही मानूंगा कि मेरा मनोरथ इस रूप में पूर्ण हुआ। माँ के तिरोधान के पश्चात जिस त्वरा में माँ स्मृति अंक प्रकाशित हुआ उससे मुझे संतोष नहीं हुआ। फिर भी मातृभक्तों ने जिस प्रेम से उसे स्वीकार किया उससे हमारा उत्साह द्विगुणित हुआ और हमने दूसरे अंक को भी माँ स्मृति अंक-दो के रूप में प्रकाशित किया। जब तीसरे अंक के प्रकाशन की बात आयी तो माँ विषयक संस्मरणात्मक सामग्री के अभाव के चलते किञ्चित निराशा हुई और मैं मन ही मन दुखी हुआ। किन्तु जब प्रकाशन कार्य प्रारंभ हुआ तो मेरे प्रयास को अभूतपूर्व सफलता मिली और अनायास यह अंक भी माँ की कृपा से अपने समृद्ध रूप में प्रकाशित हो सका। अब मेरे वर्षव्यापी संकल्प का यह चौथा और अंतिम उपहार आपके हाथ में है। मैं निश्चित रूप से विश्वासपूर्वक कहना चाहता हूँ कि यह सब माँ की कृपा का ही प्रसाद है। वे सर्वान्तरयामी हैं और सबके अन्तः में विराजमान हैं। अस्तु उनसे कुछ छिपा नहीं रहा-

मोर मनोरथ जानहुँ नीके।
बसहुं सदा उरपुर सबही के॥

उनकी प्रेरणा और कृपा से हमारी अभिलाषा सरलतापूर्वक पूरी हो सकी। माँ स्मृति अंक के क्रमिक प्रकाशन का इतना ही उद्देश्य था कि माँ विषयक गुप्त-प्रकट अधिकाधिक सामग्री मातृभक्तों को जीवन सम्बल के रूप में उपलब्ध हो सके और वे अपनी श्रद्धाञ्जलि श्री माँ के चरणों में अर्पित कर सकें। हमारे आग्रह-अनुरोध पर जिन लोगों ने सहयोग किया है हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। आगे भी स्फुटरूप में आपके चिन्तन एवं संस्मरण के सहयोग हेतु हम कामना प्रार्थना करते हैं।

श्री श्री माँ की उपस्थिति में 'मातृलीला' शीर्षक के अन्तर्गत माँ के दैनन्दिन जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती थी। सम्प्रति 'माँ के विश्व व्यापी आश्रमों की झलक' शीर्षक के अन्तर्गत प्रत्येक आश्रम में सम्पन्न होनेवाले माँ से सम्बद्ध विभिन्न कार्यक्रमों एवं भक्तों की अनुभूतियों का संक्षिप्त विवरण एक साथ प्रकाशित किया गया। इस अंक से भक्तों के अनुभूत एवं संस्मरणात्मक छोटे प्रसंगों को 'तेरी महिमा की छाया छवि' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है इन दोनों शीर्षकों के अन्तर्गत आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा। 'मातृवाणी' की अजस्र धारा तो पूर्ववत प्रवाहित होती ही रहेगी।

वस्तुत: माँ का यह पावन चरित माँ के अभाव में माँ का जीवन्त विग्रह ही है. जिसका मनन-स्मरण समान रूप से शोक-सन्ताप और कल्मष का क्षय करने वाला है। 'चरित राम के सगुण भवानी' यह तर्क और बुद्धि का विषय न होकर शुद्ध श्रद्धा-विश्वास से जुड़ा हुआ है जिसमें अवगाहन कर हम सफल मनोरथ हो सकते हैं। माँ की वह मनोहारी मुस्कान, जिसमें असंख्य जिज्ञासुओं को मूक, भक्तों को तृप्त और दर्शनार्थियों को मुग्ध करने की अपूर्व शक्ति सन्निहित थी आज भी हमें उसी रूप में उद्वेलित कर रही है। यह मातृ भक्तों का सर्वस्व है, जीवन धन है। इसे देख-सुनकर जो 'ठगा'-सा नही रह गया उसका जीवन व्यर्थ है।

—राममोहन पाण्डेय

अनुक्रमणिका

घो ष णा

श्री श्री माँ की एक निष्ठ भक्त तथा श्री श्री आनन्दमयी च्यारिटेबल सोसाइटी की कोषाध्यक्ष श्री अमर कुमार जालान की सोजन्य से "एशियाटिक आक्सिजेन एण्ड आसिटिलिन को० लि०" से एक नया XEROX या PHOTOCOPY मशीन हाल ही में दान स्वरुप प्राप्त हुआ। यह वर्तमान में दुष्प्राप्य आनन्दवार्ता की विभन्न पुराना सख्यांओं की फोटोकापी देश-विदेश की भक्तों की मांग पुरी करने में सहायता करेगी। इस विषय पर पुरी तथ्यादि आनन्दवार्ता की आगामी अक्टूबर सख्यां में प्रकाशित होगी।

प्रबन्धक
पब्लिकेशनस डिविजन
कलकत्ता

मातृ वाणी

संकलन : चित्रा घोष

जो शक्ति के संचारित होने से दीक्षा, वह शक्ति संचारित होने से ही होना, शक्ति का प्रकाश स्वप्न में हो या बाह्य ही हो, भीतर शुद्ध होने से बाहर अभाव नहीं रहता।

× × ×

जप समर्पण के सम्बन्ध में माँ ने कहा—जप करके अर्पण करना पड़ता है। अर्पण नहीं करके यदि अपने पास ही रखा जाय तो अच्छी चीज का बोध नहीं होने से उसके द्वारा बीज नष्ट होने की आशंका रहती है। अपने पास रखने से भी कुछ फल होगा, पर रक्षा का फल पूर्णाङ्गीन रूप से नहीं मिलेगा।

× × ×

जप समर्पण करते-करते धीरे-धीरे प्रकाश होने लगा। नाम और नामी कौन ? मैं कौन ? अपने को पाना क्या है ? यह जब प्रकाशित हुआ तब जप में परिपूर्णता आई। इसीलिये जप करते ही जाना। उन्मुख होकर रहना जिस मुहूर्त में प्रकाश होगा तुम्हारा जो सब अर्पण सब कुछ ही वापस मिल जायेगा।

× × ×

तुम लोगों का साधुजीवन है न, शीत को थोड़ा अग्राह्य (परवाह न करना) करने की चेष्टा करना। चलने-फिरने में ठण्ड कम लगती है। अधिक ठण्ड होने से प्रातः स्नान न करके थोड़ा दिन चढ़ने पर स्नान करना। प्रातः उठकर कपड़ा बदलकर गंगाजल स्पर्श करके सध्या इत्यादि करना।

× × ×

ब्रह्मचारियों के लिये हँसी तमाशा एक दम वर्जित। इसीलिये अधिक समय मौन रहना उचित है। दिवानिद्रा ब्रह्मचारियों को

निषेध है। प्रातः उठना और कष्ट करके दिन में नहीं सोना, अधिक दिन इस भाव से चलने पर अभ्यास हो जायेगा।

× × ×

साधुजीवन जिन लोगों का है उनको तो ठाकुरजी के भोग के बर्तन तथा अपने रसोई के वर्तन मलना यह तो सर्वदा ही चल सकता है। ठाकुर जी की सेवा के लिये बाजार करना, बरतन मलना, रसोई, पूजा तरकारी काटना सब जो कर सकता है—उसका शरीर और मन दोनों ही ठीक रहते हैं—ठाकुर जी की सेवा है ना, सेवा से चित्त शुद्ध होता है। शरीर के चलाचल से मन और शरीर दोनों ही ठीक रहते हैं।

× × +

चौबीस घण्टा रूटीन माफिक बाँध लेने से, साधुजीवन में मन को कलुषित करने की चिन्ता को समय नहीं मिलता है। राग अभिमान यह सब इस पथ के अनुकूल नहीं है। अभाव के भीतर से ही भगवान् पर निर्भरता आती है।

× × ×

प्रोग्राम तथा समवेत क्रमधारों में मौन, यह सब सुनकर माँ ने आनन्द प्रकाश किया, माँ ने कहा "अच्छे लड़के की तरह वे लोग भगवत् भाव से दिन रात बिताने से तो आनन्द की ही बात—"।

●

अच्छा लगे या न लगे, उन्हें लेकर रहना ही पड़ेगा। दवा पीने की तरह निगलना ही पड़ेगा। हरिकथा ही कथा और सब वृथा। वे पसन्द न आये तो काम नहीं चलने का। इसे हमेशा याद रखना पड़ेगा।

माँ : एक दृष्टि

नेमिशरण मित्तल

माँ प्रेम और करुणा का अगाध सागर थीं। इस सागर में जिसने डुबकी लगायी उसे यह अहसास हुआ कि आत्मा और परमात्मा काल्पनिक नहीं यथार्थ हैं, और कहीं दूर नहीं यहीं हैं, अभी हैं, प्रत्यक्ष हैं। माँ ने जिसको छुआ उसे यह चेतना हुई कि अब तक वह जिसे जीवन कह और समझ रहा था वह जीवन नहीं मरण था; सच्चा जीवन तो उसे माँ के स्पर्श से मिला है। माँ की दृष्टि और माँ का दर्शन जिज्ञासु के अन्तराल में एक दीया जला देता था।

माँ का प्रेम दूरी नहीं सह पाता था। वह आप्लावित करता था। उनके समीप जाने वाला उनमें स्वयं को और स्वयं में उनको देखने लगता था। न वहाँ शब्द होता, न सन्देश, महज मौन दृष्टि और दर्शन। बस इतने में ही यह चेतना निखर आती कि हम अनन्त सत्ता के साथ जुड़े हैं और हमारा अन्तराल दिव्य आनन्द से भर गया है। माँ हमें देखतीं, हम माँ को देखते, और हमारे मन पर शान्ति का साम्राज्य उतर आता, समस्याओं का समाधान मिल जाता, जीवन का अर्थ समझ में आ जाता और चेतना के उन्नततर स्तर अपने आप खुलते जाते।

निस्सीम और व्यापक माँ

माँ के पास जाकर किसी को माँ से कुछ पाने के लिए हाथ नहीं पसारना पड़ता था, भीख नहीं मांगनी पड़ती थी, बात नहीं करनी होती थी। माँ स्वतः अपने आपको उसमें उड़ेल देती थीं। माँ निस्सीम और व्यापकतम तत्व थीं। एक बार एक विदेशी माँ से विदा लेकर पेरिस जाने लगा। विदा के समय माँ जोर-जोर से कहने लगीं—नो बाउंडरीज, नो बाउंडरीज, पेरिस, आश्रम, पेरिस, आश्रम, एक, वन, एक।

यह सुनकर सब लोग अचरज में पड़ गये। इसके पहले माँ को किसी ने अंग्रेजी बोलते नहीं सुना था। माँ कह रही थीं कि मेरे निकट सीमाएँ नहीं है, तुम पेरिस में रहो चाहे मेरे आश्रम में, मैं

निरन्तर तुम्हारे पास हूँ। आज भी, हाँ आज भी जब माँ पार्थिव शरीर छोड़ चुकी हैं, वे उन सबके पास हैं जो उनसे जुड़े हैं।

महान पुरुषों का परिचय देते समय उनके व्यक्तित्व की चर्चा होती है। माँ के पास व्यक्तित्व नाम की कोई चीज थी ही नहीं। वे नितान्त निर्वैयक्तिक थीं, या यों कहें कि परा-वैयक्तिक। वे दूसरों को दैवी चेतना के सम्मुख खाली हो जाना सिखातीं और स्वयं खाली होकर साधकों को अपने भीतर प्रवेश करने का अवसर देती थीं। उनके जीवन का कोई मिशन न था। वे परिपूर्णता और मानवीय उत्कर्ष का उदाहरण हमारे बीच रहकर पेश करती रहीं। फिर भी यदि उनका कोई प्रभाव समाज पर पड़ा तो वह यह था कि जो लोग उनके सम्पर्क में आये उनमें आध्यात्मिकता के लिए चाह जगी, परमेश्वरी सत्ता के साथ आत्मसात हो जाने की प्रबल वांछा उत्पन्न हुई, और शुद्ध आचरण की दिशा में पाँव बढ़े।

माँ के पास भय नाम की कोई चीज नहीं थी। वे जीवनमुक्त की तरह इस संसार में जीवन भर विचरण करती रहीं। उन्हें इस संसार की माया ने नहीं छुआ, मगर उन्होंने जिसे छू दिया वह ब्राह्मी चेतना से अभिषिक्त हो गया।

●

आखण्ड भाव से मन को भगवान की ओर लगाओ। इससे अखण्ड दर्शन और प्रकाश की आशा है। पूजा, ध्यान, पाठ-कीर्त्तन जब जो इच्छा हो, उसी को लेकर सब समय मन को भगवान् के चरणों में लगाने की चेष्टा करो।

अमरता है जीवन का हास

डा० भानु शंकर मेहता

माँ आनन्द-आनन्दमयी-माँ-माता-अम्मा-जननी-अम्बा-गौ-धरती, पृथ्वी-लक्ष्मी-दुर्गा-शिवा-भगवती - शारदा..........माँ कहते ही जैसे भावों और शब्दों की वर्षा हो गयी। किसी ने कहा 'आनन्द-मयी माँ' अब नहीं रहीं। कैसी विचित्र बात कही—क्या आनन्द कभी मरता है ? वह जो सत्‌चित् है वह नाशवान कैसे हो सकता है ? माँ-माँ कभी नहीं मरती, बच्चे कभी बड़े नहीं होते [माता-पुत्र संबंध की दृष्टि से]। गुजराती के कवि स्व० बरकत वीराणी ने अपनी मृत माता के नाम एक कविता लिखी है---उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

"माँ मैंने तेरी एक भी कविता नहीं लिखी। कहते हैं' 'कवि जन्म लेता है। तो तूने ही तो मुझे जन्म दिया था। पर तब तुझे क्या पता था कि मैं कवि बनूँगा। तुझे तो मुझे मानव बनाना था। एक सुखी मानव। एक हँसता प्रसन्न मानव। और इस हेतु तूने कितने दुख सहे। कितने आँसू बहाये। तब तूने किसी प्रतिदान की आशा नहीं की थी। और मैं बदले में तुझे दूं भी क्या ? बदले में देने जैसा मेरे पास है ही क्या ? शायद ईश्वर के पास भी कुछ नहीं है। हाँ ईश्वर के पास तुझे देने के लिये एक चीज है। तेरी आत्मा की शान्ति।।

ईश्वर ने तुझे औरत बनाया। और ईश्वर को जो प्राण अत्यधिक प्यारा होता है। उसी को वह नारी रूप देता है। तूं ईश्वर को बहुत प्यारी थी। इसीलिये उसने तुझे स्त्री का जन्म दिया। तूं ईश्वर को बहुत प्यारी थी, इसीलिये उसने तुझे मरण भी दिया। मुझे आश्वासन देनेवाले भी यही कहते थे। तूं अल्लाह को प्यारी हो गयी। अल्लाह ने तुझे अपनेपास बुला लिया।

और तूं जिन्दा हो तो माँ मैं तुझे मरी हुई मानूं। और जिसने मेरे लिये लोरियाँ गायीं उसके लिये मैं मरसिया गाऊं। फिर भी गाऊं। पर जो जनम दे वह मर कैसे सकती है। मैं कवि हूं। कवि कविता के नीचे अपना नाम लिखता है। पर ईश्वर ! ईश्वर जैसा कोई

महान कलाकार नहीं है। वह मानव का सृजन करता है। पर मानव के नीचे, वह कभी अपना नाम नहीं लिखता। और जब लिखता है तब माँ का नाम लिखता है। पर माँ भी ईश्वर की महान प्रतीक है। वह बालक को उसके पिता का नाम दे देती है। माँ, नौ मास तक अपने उदर में बालक का भार उठाती है। केवल उन नौ महीनों का ऋण चुकाना चाहूँ तो ये मेरे नब्बे वर्ष भी, कोई विसात में नहीं है। फिर भी मुझे श्रद्धा है.........

तूने एक सौ दस वर्ष की उम्र में भी, मेरे नब्बे वर्ष का भार उठाया था। पर मैं नब्बे वर्ष का नहीं हूँ। और तू एक सौ दस वर्ष की नहीं है। तेरे और मेरे सम्बन्धों के बीच समय का अस्तित्व नहीं है— अस्तित्व है केवल तेरा और तेरे कारण मेरा। और बालक कभी बड़ा नहीं होता। माँ अभी मैं कविता लिख सकूं इतना बड़ा नहीं हुआ हू। अभी तो मैं पालने में सोया तेरा पुत्र हूं। और मैं पालने में लेटकर तेरे लिये कविता लिखूं। इसके बदले पालने की डोरी खींचकर तूं ही मेरे लिये लोरी गा। ईश्वर तेरी आत्मा को शान्ति देगा। तेरी लोरी मेरी आत्मा को शान्ति देगी।

लेकिन माँ को शब्दों से बहलाया या भुलाया नहीं जा सकता। श्री रमेश जोशी ने अपनी नन्हीं सी कविता में अच्छी सी बात लिखी है कि—

जिन्दगी भी कैसी कमाल है।
पहले आँसू आते थे तब माँ याद आती थी।
और अब माँ याद आती है तो आँसू आ जाते हैं।

तब जब किसी ने कहा माँ नहीं है, तो अश्रु भरी आँखों से मैंने कुछ लिखना चाहा। बालक की टेढ़ी-मेढ़ी आकार-प्रकार हीन रचना, काव्य या लेख कैसे बनती। मन में माँ थीं पर कागज पर उसे उतारना, उसका चित्र बनाना असम्भव ही था। रह-रहकर माँ की निर्मल हंसी बिखर जाती और बिखर जाते अक्षर। मुझे लगता "माँ" अपने सहज विनोद में कहती—"बहुत अच्छा लिखते हो—लिखो!" घुमड़ते अक्षर धुंआ बनकर उड़ जाते, क्या लिखूं। "माँ" तो होती है, लिखी नहीं जाती।

वे लोग मुझसे झूठ-मूठ कहने लगे आनन्दमयी माँ चली गयीं। कहाँ चली गयीं? आनन्द तो नित्य है, माँ शाश्वती है। यदि वह

नित्य लीला में लीन हो गयी, तो क्या उसे जाना कहेंगे ? क्या वह फिर नहीं आयेंगी ? क्या वह फिर नहीं हँसेगी ? मैं तो अभी इस समय भी उनकी हँसी, उनका आश्वासन, उसकी लोरी सुन रहा हूँ। पास ही कहीं तो बैठी है। कहती है 'आ खोज मुझे"।

माँ को मैंने देखा था। वहुत बड़ी बात है। कितनों को सौभाग्य होता है "माँ" को देखने का ? माँ के इतने रूप हैं, इतने अवतार हैं कि माँ को पहिचानना कठिन होता है। एक माँ वह है जिसे ऋषियों ने देखा था–"माता भूमि : पुत्रो अहं पृथिव्यां" धरती माता–वसुधा जो अपने अंक में कोलाहल करता यह कुटुम्ब लिये बैठी है। उस समुद्र-वसना विष्णुपत्नी को तो हम पैरों से रौंदते चलते हैं पर माँ है न, इसलिये निरन्तर क्षमा करती रहती हैं। शायद ही कभी हम "नमो मात्रे पृथिव्ये' कहकर उसे प्रणाम करते हों। हाँ धरित्री, क्षिति-रूपा आनन्दमयी माँ को मैंने देखा है।

फिर तरल-तरङ्ग मयी माता गंगा है कल्मषनाशिनी, अच्युत चरण तरंगिणी, माँ है, जो छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, अच्छे-बुरे सबका भार वहन करती है। कितना ही दुःख, वेदना, अशान्ति क्यों न हो उच्च स्वर में उसे पुकारो "माँ", "माँ गंगे" और कूद पड़ो उसके अंक में। देखो कैसा आनन्द, कैसी विमल शान्ति प्राप्त होती है। माँ की गोद में विहरते हुए आनन्दमयी माँ फिर विहंस उठती हैं कहती हैं "अरे मैं यहीं तो हूँ" ! हाँ सजला आनन्दमयी माँ को मैंने देखा है।

सुवहे-बनारस मशहूर है। इस समय वह ऊषा वन कर आती हैं। रात के अन्धकार से विकल सुतों को, अपनी गुलावी ऊष्मा से सुख देने के लिये स्नेहमयी माँ, तेजोमयी आनन्दमयी पधारती हैं। जव जठराग्नि प्राण को विकल कर देती है, तव वह अन्नपूर्णा सदा पूर्ण अवतरित होती है, क्षुधा का शमन कर, वह सदा-सर्वदा सम्पूर्ण-आनंद प्रदान करती है। वह अन्नमयी तृप्ति-दायिनी आनन्दमयी है, माँ ही तो जीवन शक्ति-दायिनी है। उदर की ज्वाला बुझती है तो गोपाल का स्तवन आरम्भ होता है, यह माँ का चमत्कार है, माँ की कृपा है। नित्य इस आविर्भाव में तृप्ति और आनन्द के क्षणों में, उस पावक-रूपिणी आनन्दमयी माँ को मैंने देखा है।

बासन्ती-पवन जव इठलाता है, हलराता है, दुलराता है तो बेखुदी के आलम में, यह ध्यान ही नहीं आता कि यह समीरण कहाँ से आता है। स्नेहमयी माँ के आंचल की हवा कोशमयी-सृष्टि को प्राण-

वायु देनेवाली वह अज्ञात शक्ति, सदा ही तो हमारे आसपास डोलती रहती है। माँ के स्पर्श-सा कोमल वायु का स्पर्श सदा सचेत करता है, "माँ" पास ही कहीं है। हाँ, तुम अकेले नहीं हो, मत डरो, माँ देख रही है। हाँ समीर-रूपिणी आनन्दमयी माँ को मैंने देखा है।

निराशा में डूबा हताश मन जब आकाश की ओर देखता है तो तारकावली विहँस उठती है, चाँद मुस्कराता है, शीतल चाँदनी में आनन्द का अव्यक्त सन्देश आता है। घनश्याम की शोध में ऋषियों, तत्व ज्ञानियों, भक्तों और कवियों ने आकाश की ओर निहारा है। वह रहस्यमयी जिसे स्तुति आह्वान, ध्यान, मन्त्र, यन्त्र, पूजा से जानना सम्भव नहीं है, पर वह सकलोद्धारिणी जननी, शिवा, हमसे कुपुत्रों पर सदा कृपा करती रहती है। हाँ, वह करुणामयी गगन-रूपिणी माँ, आनन्दमयी सर्वत्र व्याप्त है, उसकी कृपावर्षा में जो भींजा है वह जानता है। हाँ, मैंने सिर उठाकर आकाश को देखा है, माँ आनन्दमयी को देखा है।

पंच महाभूतों में माँ विराज रही हैं, देखो तो आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दायें-बायें सर्वत्र ही तो माँ बैठी हँस रही हैं। तुम देखते नहीं और कहते हो माँ नहीं है। कैसा विरोधोभास है जो आनन्दमयी है वह विषादमयी कैसे हो सकती है? हे भ्रमित, आँखें खोलो, माँ को देखो, माँ को पुकारो, मन-प्राण की शक्ति एकत्र कर पुकारो, "माँ, माँ। वह माँ है, अम्बा है, जननी है, बच्चा रोयेगा, पुकारेगा, तो बोलेगी कैसे नहीं! मन को शिशुमन-सा निर्मल तो बनाओ। अपने ज्ञान-विज्ञान का दम्भ त्यागो, अहं का भाव त्यागो, और "माँ" को पुकारो, वह बोलेगी, निश्चय ही बोलेगी। कभी मन में आनन्द की लहर छहरे तो समझो "माँ" आ गयी है, उसका स्पर्श ही यह भाव जगा रहा है।

व्यर्थ के कुतर्क त्यागो, और कहो—वन्दे मातरम्! सुहासिनीं सुमधुर - भाषिणीं, सुखदा, वरदा माँ, स्नेहमयी माँ हमें अपने अंक में लो, रक्षा करो, संकट से त्राण करो! अयी जाह्नवी-जमुना-विग-लित-करुणा, पुण्य-पीयूष-स्तन्य-वाहिनी, चिर कल्याणमयी, शुभ्रतुषार-किरीटिनी, अयि भुवन-मन-मोहिनी, आनन्दमयी, हम तुम्हारे चरणों में माथा नवाते हैं- हम पर कृपा करो, अनिर्वचनीय अशेष आनंद की वर्षा करो! माँ, माँ हमारा शिशु-क्रन्दन सुनो।

तेरी महिमा की छाया छवि

जादूगर के हाथों में ?

मार्सेलोज (फ्रांस) में अपने दवाखाने में दूसरा डाक्टर रखकर मैं अध्यात्म की खोज में भारत के लिए निकल पड़ा। २ फरवरी १९५१ को मैं बनारस पहुँचा। निराश था क्योंकि भारत के अध्यात्म को खोज नहीं पाया था। २१ फरवरी को मुझे कोलम्बो से घर के लिए वापस जहाज पकड़ना पड़ा।

भटकता-भटकता शाम को ६ बजे माँ (आनन्दमयी माँ) के भदैनी आश्रम में पहुँच गया, और न जाने क्या हुआ, मेरा जहाज तो नियत समय पर चला गया मगर मैं माँ के चरणों की छाया को आज तक नहीं छोड़ सका।

माँ के सामने पहुँचते ही, मैंने समझ लिया कि निराश होने की जरूरत नहीं है। मेरी खोज पूर्ण हुई। रात को दस बजे माँ ने मुझे भेंट का समय दिया। भेंट वीस मिनट चली। मैं एक भी प्रश्न नहीं पूछ सका। प्रश्न रह ही नहीं गये थे। दर्शन से ही सारे प्रश्नों का समाधान हो गया था। फिर भी मैं जो-जो प्रश्न लेकर भारत आया था उन सबके उत्तर माँ ने उन बीस मिनटों में मुझे दिये और उससे भी कहीं ज्यादा उन्होंने मेरे भीतर कुछ ऐसा भर दिया जो मुझे आज तक आप्लावित किये हुए है।

भेंट के बाद मैं क्लार्क होटल लौट गया। मेरा मन एक अनिर्वचनीय आह्लाद से भरा था, और मेरी आँखों में माँ की तस्वीर थी। मैं सो नहीं पाया। अगले दिन सवेरे मेरे भीतर से मेरी पाश्चात्य बुद्धि ने मुझे आवाज दी, "संभल जाओ, तुम एक बहुत बड़े जादूगर के हाथों में फँस गये हो। उसने तुम्हें अपनी इच्छा का दास बना लिया है।"...और मैंने फैसला कर लिया कि मैं माँ के प्रभाव को अपने ऊपर हावी होने नहीं दूँगा।

मगर मैं शीघ्र ही समझ लिया कि प्रभाव से लड़ा जा सकता है, प्रेम के विरुद्ध लड़ाई नहीं की जा सकती। मुझे लगा कि मैं एक ऐसे

अलौकिक प्रेम के सूत्र से बँध गया हूँ जो नितांत निर्मल, दैवी और बहुत सघन है। यह प्रेम नित्यप्रति बढ़ता ही चला गया। माँ ने मेरे रास्ते के सब काँटे अपने हाथों से चुने। माँ ने मेरी आत्मा को अपनी बाहों में उठा लिया। माँ गंगा हैं। उनके स्पर्श से पवित्रता मिलती है, उन्नयन हो जाता है। माँ किसी के लिए माँ हैं—प्रेमल और कोमल, किसी के लिए मित्र और किसी के लिए बच्ची। जो आगे बढ़ गये हैं माँ उनके लिए गुरु हैं। मेरे लिए माँ आनन्दमयी हैं।

—स्वामी विजयानन्द
(भूतपूर्व डाक्टर अडोल्फ जेम्स विनट्रोव, फ्रांस

बरगद का पेड़

१९६२ की बात है, ग्रीष्म समाप्त हो चुका था। माँ अपने कनखल आश्रम में थीं।

उस दिन तक मैंने किसी भी मनुष्य को झुककर प्रणाम नहीं किया था। मैं ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकता था।

लेकिन न जाने क्या हुआ, ऐसे ही माँ मेरे सामने आयीं, मैं घुटनों के बल झुक गया और अगले कुछ क्षणों में मुझे जो अनुभूति हुई मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। मुझे ऐसा लगा जैसे बरगद का एक पेड़ मेरी तरफ बढ़ा आ रहा हो। कुल मिलाकर मेरे सामने अस्तित्व का एक नितान्त नया आयाम खुल गया। मुझे लगा कि मेरे सामने एक ऐसा व्यक्ति खड़ा है जिसका अस्तित्व एकदम परावैयक्तिक (सुपर पर्सनल) है, और जो अहं से एकदम खाली है।

माँ को देखकर मुझे ऐसी अनुभूति हुई मानों मेरे सामने माता गंगा और पिता हिमालय खड़े हों। माँ अच्छाई और बुराई दोनों के पार खड़ी दिखायी दीं।

उसी समय गंदे कपड़ों में एक देहाती महिला, जो लगभग अंधी थी, वहाँ आयी और माँ के पास बैठ गयी। उसके कपड़ों से दुर्गन्ध आ रही थी, मगर माँ तो उसके सिर से सिर सटाकर कितनी ही देर

तक उससे बतियाती रहीं। मुझे लगा कि माँ उसकी बात महज कानों से नहीं अपने समूचे अस्तित्व से सुन रही हैं।

माँ को देखने भर से मेरे भीतर-बाहर सब कुछ शांत हो गया। मेरे लिए यह रहस्यमय था। मुझे लग रहा था कि माँ के भीतर से एक दैवी ज्योति फूट रही है और उनमें मानवी आत्मा नहीं वरन् इस जगत की मूल सत्ता निवास करती है। उनमें न नम्रता है, न गर्व। वे बस सरल हैं, सहज हैं।

माँ की रहस्यमय शक्ति उनके चमत्कारों में नहीं उनके अस्तित्व में निहित है। उनका कोई भी कार्य अपने लिए नहीं होता। वे करुणा की मूर्ति हैं और दूसरों के लिए जीती हैं।

थोड़ी ही देर में माँ हम लोगों के बीच से होकर घूमने लगीं। ऐसा लगा कि वे हजारों लोगों को हजारों हाथों से अपने-आपको बाँट रही हैं। मेरा मन भगवान के प्रति कृतज्ञता से भर उठा कि उसने मुझे मां के माध्यम से अपने दर्शन का अवसर दिया। मै यह सोचकर रोमांचित हो उठा कि मैं ईश्वर के कितना समीप आ गया हूँ, और जब माँ स्नेहपूर्वक मुझे पास बैठाकर मुझसे बात करने लगीं तब मुझे लगा कि ईश्वर के साथ मेरी घनिष्ठता हो गयी है। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा और मैं खिल उठा।

एक जैन दार्शनिक ने कहा है, "दिव्य पुरुष सूखी डाली को छू दें तो उसमें फूल खिल उठते हैं।

—मेलिता मेशमान (जर्मन उपन्यासकार)

अनादिनाथ पर करुणादृष्टि

४४ हाजरा रोड, कलकत्ता। शाम के तीन बजे थे। भयंकर गर्मी पड़ रही थी। एक नर्स और एक सहायक की मदद से ८२ वर्षीय अनादिनाथ मुखर्जी टैक्सी से उतरकर दरवाजे की ओर बढ़े। वे चार-पाँच कदम ही चले होंगे कि गिर पड़े और मूर्छित हो गये। मूर्च्छा दूर हुई तो अनादिनाथ ने माँ के दर्शन की लालसा प्रकट की।

माँ सामने के कमरे में एक बिछौने पर बच्ची की तरह पड़ी थीं। माँ को कौन जगाता। इधर अनादिनाथ की साँस उखड़ने लगी और वहाँ मौजूद लोगों को लगा कि अगले क्षण अनादिनाथ का दम टूट जायेगा।

माँ को कुछ नहीं बताया जा सका था, लेकिन माँ की चेतना कभी नहीं सोती। वे शायद सब कुछ जानती थीं। पलभर दरवाजा खुला और माँ अनादिनाथ की तरफ यह कहती हुई दौड़ी, "बाबा तुम्हारे मन में इस छोटी सी बच्ची के लिए कितना प्यार भरा है, तुम अपने भयंकर दर्द को भूलकर और जान का खतरा उठाकर इस भयंकर गरमी में घर वालों से छिपकर अपनी बच्ची को देखने के लिए टैक्सी से यहाँ चले आये।"

और अगले ही क्षण माँ का कोमल स्पर्श अपने सम्पूर्ण माधुर्य और स्नेह के साथ अनादिनाथ के अंग प्रत्यंग को नवजीवन प्रदान करने लगा। अनादिनाथ सब कष्ट भूल गये, उनकी आँखों में आँसू भर आये। माँ ने उनको कान में धीरे से एक मंत्र दिया।

इसके बाद अनादिनाथ पूर्ण स्वस्थ होकर बरसों तक जिये।

शरणवत्सल माँ

माँ ने बीस बरस के एक लड़के को आश्रम में रख लिया। लड़का बहुत झगड़ालू था। आश्रम के दूसरे सभी ब्रह्मचारी उससे इतने तंग आ गये कि उन्होंने उसे निकलवाने के लिए अनशन शुरू कर दिया।

माँ को सूचना मिली। रात के ९ बजे थे। सभी आश्रमवासी मौन-ध्यान के लिए माँ के इर्द-गिर्द बैठे थे। मौन जैसे ही समाप्त हुआ, माँ ने प्रत्येक ब्रह्मचारी को बुलाकर पूछताछ की और सबने एक स्वर से उस झगड़ालू ब्रह्मचारी को निकालने की मांग की।

पल भर में ही माँ के चेहरे का भाव बदल गया। उनके मुख पर दैवी करुणा झलक आयी और वे धीमे स्वर में बोलीं," जब इस बेचारे बालक को कोई भी नहीं रखना चाहता तबतो उसे मेरी जरूरत और भी ज्यादा है। बोलो, क्या कोई माँ इतनी मुसीबत में पड़े हुए अपने

बीमार बच्चे को छोड़ सकती है ? अगर मैं इस बिगड़े हुए ब्रह्मचारी को माया में सड़ने के लिए छोड़ दूँ तो बताओ तुम्हारा और इस जगत का उससे क्या भला हो जायेगा ?

माँ के मुँह से ये शब्द निकलते ही सभी आश्रमवासियों का दिल भर आया, और सबसे ज्यादा तो पिघला वह शैतान ब्रह्मचारी जिसका इन शब्दों ने समूचा जीवन और आचरण ही बदल डाला। आज वह माँ के श्रेष्ठतम भक्तों में से एक है। (नाम गोपनीय रखना आवश्यक समझा गया)

—गंगाचरण दासगुप्त, कलकत्ता

हाथ से काम करो, मन ही मन इष्ट नाम जपते रहो। इससे काम भी अच्छा होगा और गृहस्थी का मंगल होगा। धर्म को अलग कर गृहस्थी चलाने पर दुःख के सागर में तैरना पड़ता है। गृहस्थी बसाने पर धर्म की गृहस्थी बसाना सभी का कर्त्तव्य होना चाहिए।

कर्त्तव्य-पालन करणीय। फलाफल की ओर बिना देखे—कर्त्तव्य-पालन करना उचित है। सत्य की प्राप्ति से बढ़कर और कोई कर्त्तव्य नहीं है। असली कर्त्तव्य भगवत्-प्राप्ति का प्रयत्न करना।

श्री माँ

श्री रामभक्त कपीन्द्र जी महाराज

श्री श्री माँ आनन्दमयी का दर्शन मुझे अनेकों बार हुआ है। उनकी यह अलौकिक लीला इस देश में ही नहीं विदेशों में भी फूलती-फलती रही है। मुझे अनेकों संस्मरण याद हैं, कहाँ तक उनका वर्णन करूँ। वे प्रभु की आत्मा थीं, उनकी दिव्य दृष्टि थीं। वे मानव के अन्तर-विचारों को एक ही दृष्टि में पहचान लेती थीं। उनके पावन नेत्रों में पहचानने की जो शक्ति थी वह मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखी। उन्हें लोभ, काम, क्रोध, ईर्ष्या जैसे राक्षसों ने नहीं घेरा था। आज देश में साधुवेष बहुत हैं किन्तु साधुवाद देखने को कम मिलता है। अहं जैसी कोई बात उनके हृदय में नहीं थी। अपने सम्पर्क में आने वालों में उनकी गुणग्राही दृष्टि रहती थी। ऐसा मैंने अनुभव किया है। उन्हें चैतन्य महाप्रभु की माँ कहा जाये अथवा वही आत्मा कहा जाये, यह मेरी समझ से बाहर की वस्तु है। भारत का विराट साधु-समाज जिसमें संन्यासी-उदासी, कबीरपन्थी, नानकपन्थी, सिक्ख समाज, मुसलमान, ईसाई, हिन्दू, सब उस वपु में समाये हुए थे। ऐसी शक्ति शताब्दियों में अवतरित होती है और भूले-भटके भ्रान्त पथिकों का पथ-प्रदर्शन कर अपने निज स्वरूप में लीन हो जाती है।

उनके पावन नाम यश से पूरित आनन्दवार्ता जैसा त्रैमासिक पत्र निकल रहा है यह मानवता को शक्ति देने वाला है। कभी समय पर मैं अपने ढेर सारे संस्मरण सुनाऊँगा। मेरे जीवन में उनकी दिनचर्या का विशेष प्रभाव पड़ा है। उनकी आत्म-दृष्टि का एक उदाहरण है। एक बार उनके चरणों में पीड़ा थी। मुझे ज्ञात हुआ कि माँ अस्वस्थ हैं। मैं उनके पास तुरन्त गया। मैंने पूछा, "माँ क्या आपके चरणों में पीड़ा है ?" उन्होंने उत्तर दिया, कि "वह अपना काम करता है और मैं अपना।" किसी ने पूछा, "श्री राम-कृष्ण में क्या कोई भेद है ?" उन्होंने कहा, कि "यही भेद है जो तुम कह रहे हो"।

एक बार मैंने तुलसी के पत्ते के विषय में कुछ पूछा, उन्होंने एक घण्टे तक तुलसी के पत्ते की महिमा सुनाकर मुझे मुग्ध कर दिया। प्रभु नाम को, चरित्र को उन्होंने प्रभु रूप ही माना। उनका जो कुछ गुण गाया जाये वह थोड़ा है। ब्रह्म के गुण कौन गा सकता है, वह तो सर्वत्र व्याप्त हैं।

१२२, सुन्दर नगर, नई दिल्ली।

माँ आनन्दमयी और महात्मा गांधी

नेमि शरण मित्तल

कमला नेहरू ने महात्मा गाँधी से माँ की आध्यात्मिक शक्ति के बारे में चर्चा की थी। गाँधीजी को उसका स्मरण रहा और जब सेठ जमनालाल बजाज १९४१ की गर्मियों में इंदिराजी के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ के लिए मसूरी जाने लगे तो बापू ने उनसे कहा कि तुम रास्ते में माँ से मिलकर आना और उनसे कहना कि किसी समय वे सेवाग्राम पधारें।

मसूरी से वापसी पर जमनालालजी ने राजपुर आश्रम में माँ का दर्शन किया और अलग से बातचीत के लिए समय माँगा। आश्रम के लोग जमनालालजी को सेठजी कहकर पुकार रहे थे, उन्हें यह अच्छा नहीं लगा, तब माँ ने कहा कि जमनालालजी को भैय्या जी कहा जाये। उस समय से घर और बाहर जमनालालजी को भैय्याजी कहा जाने लगा।

अगले दिन जब जमनालालजी निजी मुलाकात के लिए आश्रम पहुँचे तब माँ कमरे में चटाई पर लेटी हुई थीं। यह देखकर उनके मन में मातृभाव जाग उठा और वे माँ के तलुवों की हलके हाथ से मालिश करने लगे। कोई घण्टे भर बाद माँ ने अपना मुँह ढँक लिया। इसपर जमनालालजी बच्चों की तरह बिलख पड़े और बोले कि मेरे मन में आपको देखकर वही भाव जागृत हो गया जो अपनी माँ को देखकर होता था। यह घटना माँ ने जमनालालजी के देहावसान के बाद २० फरवरी १९४२ को रात को स्वयं बापू को सुनायी।

उस बार जमनालालजी कोई पन्द्रह दिन आश्रम में ठहरे और माँ से बराबर यह आग्रह करते रहे कि आप वर्धा चलें, मुझे आपसे बहुत सी जटिल मानसिक गुत्थियों के बारे में बात करनी है। वास्तव में जमनालालजी उन दिनों मानसिक रूप से बहुत अशान्त थे और शेष जीवन माँ के चरणों में बिताना चाहते थे।

जमनालालजी जिस समय माँ से बिदा लेने गये तो माँ ने उनसे कहा कि देखो सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक प्रतिदिन मौन रखना

और अगले दिन के काम के लिए कभी पहले से मत सोचना, हो सकता है कि छः महीने के भीतर तुम्हारा शरीर छूठ जाये।

वही हुआ जमनालालजी ने १० फरवरी १९४२ को शरीर छोड़ दिया। उस दिन माँ कानपुर जाने के लिए जब लखनऊ स्टेशन पर पहुँचीं तो जमनालालजी के बड़े बेटे कमलनयन वजाज ने उन्हें उनके देहावसान की खबर दी और उनसे प्रार्थना की कि आप (माँ) भैय्याजी की अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिए वर्धा चलें। उस समय माँ कुछ न बोलीं, लेकिन दो-चार दिन बाद ही वर्धा के लिए निकल पड़ीं। जमनालालजी ने मरने से पहले ही माँ के ठहरने की व्यवस्था गोपुरी में कर रखी थी और कह दिया था कि माँ यदि मेरे मरने से पहले यहाँ नहीं आयीं तो मरने के बाद अवश्य आयेंगी। वही हुआ। माँ को जमनालालजी द्वारा पूर्व निश्चित स्थान पर ठहराया गया। माँ १६ फरवरी को वहाँ पहुँचीं। जमनालालजी की धर्मपत्नी सहिष्णुता तथा करुणा की साक्षात् मूर्ति जानकी देवी-जी ने अपना कष्ट भूलकर माँ की भरपूर सेवा की। बापू उन दिनों चीन के राष्ट्रपति मार्शल च्यांगकाई शेक से भेंट के लिए कलकत्ता गये हुए थे। सूचना पाते ही वे १९ फरवरी को सेवाग्राम पहुँच गये। उस दिन जमनालालजी का श्राद्ध दिवस था।

शाम को पाँच बजे प्रार्थना सभा हुई जिसका नेतृत्व विनोबाजी कर रहे थे। उसी समय माँ ने नागपुर के लिए चलने की घोषणा कर दी और वे स्टेशन जा पहुँचीं। स्टेशन पर विनोबाजी और जानकी-देवी जो उन्हें मनाने गये। संयोग से उस समय जाने वाली सवारी गाड़ी सेना के लिए चल रही स्पेशल गाड़ी के कारण स्थगित हो गयी अतः माँ गोपुरी लौट गयीं। उसी समय उन्हें बापू का सन्देश मिला कि यदि वे सेवाग्राम न आना चाहें तो बापू स्वयं गोपुरी जाकर माँ का दर्शन करेंगे। माँ यह सन्देश पाते ही कार से सेवाग्राम के लिए चल पड़ीं।

माँ जिस समय बापू की कुटिया में घुसीं तब वे चर्खा चला रहे थे। माँ उन्हें देखते ही जोर से बोलीं, "पिताजी, तुम्हारी पागल बच्ची तुमसे मिलने आ गयी।" यह सुनकर बापू बोले, "तुम पागल बच्ची होती तो जमनालाल तुमसे प्रभावित न होता। मैं उसे तीस बरस में भी जो शान्ति नहीं दे सका वह उसने तुम्हारे पास दो सप्ताह में प्राप्त

कर ली। मैंने ही उसे तुम्हारे पास भेजा था।" बापू ने चर्चा में माँ को कमला नेहरू का गुरू कह दिया। इस पर माँ बोलीं कि मैं कमला की गुरु नहीं हूँ, किसी की भी गुरु नहीं हूँ।

उस रात बापू ने माँ को वर्धा लौटने की अनुमति नहीं दी। यह माँ के जीवन में पहला अवसर था जब वे किसी के आग्रह पर कहीं रुकी हों। बापू की कुटिया के बरामदे में लकड़ी के दो तख्त बिछाये गये। बापू को सुलाने के लिए डा० सुशीला नायर और राजकुमारी अमृत कौर उनके तलुये सहलाने लगीं तो माँ ने उनसे पूछा कि अगर मैं बापू जी को ले जाऊँ तो तुम क्या करोगी। माँ ने यह प्रश्न तीन बार दोहराया। सुशीला नायर ने जवाब दिया कि हम बापू जी के साथ जायेंगी। इस पर माँ ने बापू से कहा कि मौका देखकर मैं तुम्हें ले जाऊँगी।

माँ के साथ बापू की शायद यह अन्तिम मुलाकात थी, लेकिन जमनालालजी के परिवार के लिए माँ शांति और सान्त्वना का स्रोत बन गयीं। जानकीदेवी जी जमानतलालजी की मृत्यु के कारण बहुत उद्विग्न हो गयी थीं, वे उनकी चिता पर सती होना चाहती थीं, लेकिन बापू के समझाने पर मान तो गयीं थी, मगर बहुत अशांत थीं। वे काफी समय माँ के पास रहीं और इससे उन्हें बहुत शान्ति मिली। उनकी बेटी मदालसा नारायण (श्री मन्ननारायण जी की धर्मपत्नी) अपने बेटे सहित माँ की अनन्य भक्त हैं। इसी तरह जमनालालजी के बड़े बेटे कमलनारायण बजाज अन्तिम समय तक माँ के भक्त रहे। यही स्थिति उनके छोटे बेटे रामकृष्ण बजाज की है। गांधी जी की हत्या के समय माँ अपने भक्तों से घिरी बैठी थीं, अचानक उनकी मुखमुद्रा गंभीर हो गयी और वे बोलीं – इसको फिर से सलीब पर ठोंका जा रहा है।' थोड़ी ही देर में रेडियो से गांधी की हत्या का समाचार प्रसारित हुआ।

गांधी के अनुयायी विशेषत: जमनालाल बजाज यह चाहते थे कि माँ की शक्ति का लाभ स्वराज्य के संघर्ष को मिले और मां बापू के साथ सहयोग करें। मगर माँ सामाजिक और राजनितिक कामों की ओर से सर्वथा उदासीन रहकर साधकों के भक्तिभाव का पोषण करती रहीं। इसका मुख्य कारण यह नहीं था कि माँ स्वराज्य के महत्व को नहीं पहचानती थीं, वरन् यह था कि माँ उस दैवी कृपा को

२

जगाना अपना मुख्य कार्य मानती रहीं जिससे सब कुछ श्रेष्ठ बनता है और अलौकिक होता है।

एक बार माँ से किसी भक्त ने कहा कि माँ आज समाज में बहुत कष्ट, अनैतिकता और बुराई फैली हुई है, यह बहुत ही निराशा की स्थिति है। माँ ने शान्ति भाव से इसका उत्तर देते हुए कहा, देखो, कुछ भी नया और अच्छा पैदा होने से पहले प्रसव वेदना का काल आता है। यह समय प्रसव वेदना का काल है, शीघ्र ही काल की कोख से नया और श्रेष्ठ समाज पैदा होने वाला है। माँ के पास श्रेष्ठ समाज पैदा करने का एक ही उपाय था जिसे वे जीवन भर करती रहीं—अच्छे और श्रेष्ठ आदमी का निर्माण।

●

सान्त्वना की धारा जहाँ है, वहीं कर्मक्षय की पन्था रहती है न ? गन्तव्य स्थान जब तक अप्राप्त तब तक कर्म, अकर्म के आश्रय में कर्मानुयायी फल भोग करना पड़ता है।

—श्री माँ

अन्तर्यामी माँ

श्रीमती चन्द्रा त्रिपाठी

आज माँ की स्मृति में कुछ पुष्पांजति अर्पित करने बैठी हूँ तो मस्तिष्क में प्रेम की एक अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। समझ में नहीं आता क्या लिखूं; लेखनी की गति अवरुद्ध हो गयी है। भावनाओं के ज्वार से सारा हृदय आलोड़ित है। उन्होंने स्नेहिल कर से जो कुछ प्रदान किया, वह मेरे जीवन की अमूल्य धरोहर है। क्या मैं माँ के उपकारों से जन्म-जन्मान्तर तक उऋण हो सकती हूँ?

कदाचित् पूर्वजन्म के पुण्यफल से पारस पत्थर रूपी किसी महान् आत्मा से संसर्ग होता है और सारे जीवन की धारा सुनियोजित हो जाती है। आज स्मरण हो रहा है कि माँ का सर्वप्रथम दर्शन करने गयी तो कुछ-कुछ वही घटित हुआ जो कि स्वामी विवेकानन्द द्वारा महर्षि रामकृष्ण परमहंस के प्रथम साक्षात्कार के समय हुआ था। ऐसा प्रतीत हुआ कि बंग देश की एक अशिक्षित विधवा, अपने सीमित भाव बोध से जकड़ी हुई है। उसमें कुछ भी असामान्य दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। सांसारिक कुंठाओं में जकड़ी मैं अनुभव कर रही थी कि उनका आन्तरिक लगाव केवल अपने बंगवासियों से ही है। उस निश्चित समय में वे धोतियाँ वितरित कर रहीं थीं, जिसे उपस्थित महिलायें प्रसाद रूप में ग्रहण कर रही थीं। मुझे वह लम्बी किनारों वाली साड़ियाँ, जिन्हें बंग महिलायें विशेष रूप से धारण करती हैं, पसन्द नहीं आयीं। मुझे कुछ अजीब सा लगा। लौटते वक्त मैंने बाबू (पं० कमलापति त्रिपाठी) से अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुये कहा कि मुझे तो कुछ विशेष नहीं दीखा। उन्होंने मुस्कराकर केवल इतना ही कहा कि "प्रतीक्षा करो।"

दूसरी बार गयी तो ममता की अबाध धारा प्रवाहित हो रही थी– माँ ने पूछा, "क्या हाल है?" मैं कुछ विशेष बोल नहीं पायीं। चलते वक्त उन्होंने प्रसाद रूप में वही चौड़े बार्डर वाली एक साड़ी मेरी

---

*औरंगाबाद, वाराणसी।

तरफ बढ़ाया। फिर रुकीं मुस्करायीं और बोलीं, 'नहीं बाबा तुम्हें ये पसन्द नहीं है। एक दूसरी रेशम की उम्दा साड़ी देकर उन्होंने मुझे बिदा किया। मेरे ऊपर तो घड़ों पानी पड़ गया। हे ईश्वर, मेरे अन्तर्मन के किसी कोने में दबी तुच्छ सी बात को भी जान गयीं।' उनकी महानता का आभास अपने उस तुच्छ आकलन से हुआ। अब अविश्वास का अस्त हो रहा था, उसका स्थान स्नेह एवं विश्वास ले रहा था।

भक्त याचक अपने ईष्ट को कुछ प्रदान नहीं कर सकता। वह लेता है, देता कुछ नहीं। क्रमशः मैं माँ के निकट आ गयी, उनकी कृपापात्र बन गयी। जब भी अवसर मिलता, उनका दर्शन लाभ हो जाता। कहीं भी कुछ बाधा या रुकावट नहीं आती। वह मुझे हर प्रकार से सन्तुष्ट करतीं। माँ का विराट स्वरूप और क्या हो सकता है ? मुझे स्मरण आ रहा है कि एक बार हरिद्वार जाना हुआ। वहाँ पर मुझे पता चला कि निकट के विरला विश्रामस्थल में माँ अज्ञातवास कर रही हैं। संयोग की वात कहिये, मेरे पेट में असह्य पीड़ा आरम्भ हो गयी। मैंने माँ को सन्देश प्रेषित किया, मिलने का समय मिल गया। निर्धारित वक्त पर पहुँची। एक सुसज्जित विशाल ड्राइंगरूम जिसमें एक टेबुल पर सफेद गुलाबों का फूलदान रक्खा था। उन सुन्दर फूलों को मैं विभोर होकर देख रही थी तभी माँ कमरे में प्रविष्ट हुयीं। मैंने पूरी तरह से उनके चरणों मैं साष्टांग प्रणाम किया और पीड़ित स्वर में बोली 'माँ बड़ी 'बाथा' है'' वह निःशब्द रहकर मेरे पूरे शरीर पर अपने कोमल हाथ फिराने लगीं। कुछेक मिनटों में सारी पीड़ा गायब हो गयी। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि यहाँ आने के पूर्व मेरी सारी देह वेदना से दोहरी हो रही थी, वहीं अब लेशमात्र भी पीड़ा शेष नहीं रह गयी थी।

वास्तव में माँ का स्पर्श ईश्वरीय था। फिर माँ दूसरे कमरे में मुझे लिवाकर गयीं। वहाँ उनकी कुछ शिष्यायें विराजमान थीं। माँ ने पूछा कि भजन सुनोगी? मेरे हाँ कहने पर भजन आरम्भ हुआ। पहले हिन्दी में फिर बँगला में। दूसरी भाषा का भी मुझे पूर्ण ज्ञान था इसलिए समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इसके पश्चात् जो कुछ भी घटित हुआ वह सचमुच मेरे लिये आश्चर्यजनक था। सर्वप्रथम गीता के आठवें अध्याय का, तत्पश्चातृ दुर्गासप्तशती के छठवें अध्याय का

सस्वर पाठ हुआ। मैं निरन्तर ऊँचे एवं स्पष्ट स्वरमें पाठ करतीरही। कहना न होगा कि इसके पूर्व जीवन में मैंने कभी भी गीता अथवा सप्तशती का अध्ययन नहीं किया था। यह माँ की कृपा ही थी कि मैं अबाध रूप से उक्त अपठित ग्रन्थों का पाठ कर रही थी। अब विदा लेने का समय हो रहा था। माँ निरन्तर मेरे समक्ष रहीं। एकाएक वह बोल पड़ीं "मैंने जो खिचड़ी बनायी है, वह इसको खिलाओ।" एक शिष्या पात्र में खिचड़ी लायी। खाने पर लगा कि वह बिल्कुल ताजी और गर्म थी। मैं समझ नहीं पायी कि माँ ने कब जाकर उसको तैयार किया। वह तो सर्वदा हमारे पास थीं। उस खिचड़ी को ग्रहण करने के पश्चात् आजतक मुझे उदर का कोई भी कष्ट नहीं हुआ।

अभी कुछ बाकी था। माँ ने मुझे चलने से पूर्व प्रसाद देने के लिए कहा। देखती क्या हूँ कि एक शिष्या उसी तरह के सफेद गुलाब के फूल लिये चली आ रही है, जिन्हें मैं प्रवेश के समय प्रशंसा की दृष्टि से देख रही थी। क्या वह मेरी इच्छा को समझ गयी थीं ? मैंने सुना और पढ़ा था कि महान विभूतियों के सम्पर्क से व्यक्ति का हृदय परिवर्तित हो जाता है किन्तु यह बात मैंने स्वयं अनुभव किया।

मेरी ज्येष्ठ पुत्री अंजलि को ईश्वर में विश्वास नहीं था। उसका विवाह हुआ, किन्तु दुर्भाग्य से कुछ वर्षों पश्चात् ही उसके पति की मृत्यु हो गयी। वह अब बिल्कुल अपने में सिमटकर निराशावादी हो गयी। हम लोग चाहते थे कि वह सदैव के लिये वैधव्य न ग्रहण करे। फिर से उसके जीवन में बहार आये। लेकिन वह हमेशा इन्कार करती रही। यही वेदना हमें भीतर ही भीतर साल रही थी।

कुछ कार्य से दिल्ली जाना हुआ। वहाँ पर पता चला कि माँ आजकल अपने आश्रम में विराजमान हैं। मैं अपनी पुत्री के साथ गयी। माँ ने अपनी चिरपरिचित शैली में हमें दर्शन दिया। मैंने विस्तार में अपनी पुत्री की समस्या बतलायी। माँ ने उससे पूछा कि गीता का अध्ययन किया है। उसके नकारात्मक उत्तर देने पर उन्होंने उसकी एक प्रति मँगायी और एक विशेष कपड़े में बाँधकर दिया। तत्पश्चात वह बोलीं कि इसका पाठ करते रहना। चलते वक्त वह बोलीं कि नवरात्रके अन्तिम दिन जरूर आना। पूरी तरह से सधवा का शृङ्गार करके और चौड़े किनारों वाली लाल साड़ी पहनकर आना। अंजलि उनके कथनानुसार तैयारी करके, निर्धारित दिन आश्रम गयी। माँ ने

उसे अपनी बगल में बैठाया और भक्तों को प्रसाद उसी के हाथों से वितरित करवाया। सारे कार्यक्रम में वह वहाँ रही। उक्त क्रिया-कलाप का कैसे असर पड़ा, यह तो मैं नहीं जानती, किन्तु कुछ दिनों बाद परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगे। वह अब गीता का नियमित रूप से पाठ कर रही थी। उसे ईश्वर में विश्वास उत्पन्न हो गया था। अब तो वह उपयुक्त वर मिलने पर विवाह के लिये भी तैयार हो गयी है। निश्चित रूप से मेरे परिवार के लिये यह माँ का बहुत बड़ा वरदान था।

सन् '७५ के आसपास मेरे श्वसुर पं० कमलापति त्रिपाठी बहुत गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गये। डाक्टरों को सन्देह हुआ कि गले का कैंसर है। उन्हें दिल्ली के आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान में दाखिल किया गया। मेरी चिन्ता का पुरसांहाल कोई न था। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? तभी ज्ञात हुआ कि माँ आनन्दमयी दिल्ली पधारी हैं। प्रातः काल से लेकर रात्रि तक बाबू की ही सेवा में लगी रहती थी। समय नहीं मिल पाता कि माँ के दर्शन के लिये जा सकूं। अन्तिम दिन जब माँ जाने वाली थीं तो पुरानी दिल्ली के स्टेशन पर पहुँची। माँ आयीं तो उनके साथ ट्रेन के डिब्बे में बैठकर वार्तालाप करने लगी। मैंने कहा 'माँ, बाबू के गले में बहुत तकलीफ है।' छूटते ही वह बोलीं। उनको बम्बई ले जाओ।' कदाचित बिना बताये ही वह वह समझ गयीं थी कि गले का कैंसर है और उसकी देश में सर्वोत्तम चिकित्सा बम्बई में होती है। मैंने उन्हें बताया कि अब तो यहाँ भर्ती करवा दिया गया है, किन्तु एक चिकित्सा विशेषज्ञ कल बम्बई से आ रहे हैं। उन्होंने आश्वस्त किया कि बाबू जल्दी ही ठीक हो जायेंगे। चलते वक्त अपनी चिरपरिचित आदत के अनुरूप प्रसाद देने के लिये हाथ बढ़ाया, वहाँ उस वक्त कुछ भी न था। गाड़ी छूटने का समय हो गया था। इतने में क्या देखती हूँ कि एक सिन्धी दम्पती फल का बड़ा सा टोकरा लिये आ गये। माँ ने अविलम्ब उसमें से कुछ फल दिये और बाबू को ग्रहण करवाने का आदेश दिया। आज लगभग ६-७ वर्ष गुजर गये हैं। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यह माँ के आशीर्वाद का ही प्रताप है कि बाबू पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये हैं और देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

साधारण मानव मन किसी सहारे के द्वारा इस कठिन भव सागर

को पार जाने की कामना करता है। वह सहारा किसी महामानव का ही हो सकता है, लेकिन महापुरुष का भौतिक रूप भी नश्वर होता है। जब राम और कृष्ण ही न रहे तो और किसी की क्या बिसात ? देर-सवेर सभी को इस संसाररूपी नाट्य-मंच से विदा लेना ही होता है। यह सच है, लेकिन अभी हमें विश्वास था कि माँ के सान्निध्य का लाभ बहुत दिनों तक मिलता रहेगा। ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था, वह माँ को कष्ट में नहीं देखना चाहता था। मैं और मेरे पति माँ के महाप्रयाण के कुछ दिनों पूर्व देहरादून के निकट आश्रम में उनके दर्शनार्थ गये। माँ पूर्णरूपेण अस्वस्थ थीं, हाथ तक हिलाने-डुलाने में दिक्कत होती थी। वह एकदम क्षीणकाय हो गयी थीं, स्वर भी बिल्कुल धीमा था। मेरे चरण छूने पर उन्होने हाल-चाल पूछा। हम लोग कुछ समय तक वहाँ ठहरे रहे। वहाँ कुछ भीष्म पितामह की शरशय्या वाला वातावरण व्याप्त था।

विदा लेने से पूर्व माँ ने हम सभी को एक बार पुनः आशीर्वाद दिया। गुलाब के फूल प्रसाद के रूप में हमारी तरफ बढ़ाये। मैंने सोचा कि पति ही उसको ग्रहण करें तो उत्तम रहेगा। लेकिन माँ ने मेरे ऊपर अपार स्नेह प्रदर्शित करते हुये और फूल लाने के लिये कहा। लगभग प्रत्येक व्यक्ति का एक मनपसन्द पुष्प होता है। मुझसे कोई पूछे तो मैं बिना रुके कहूँगी 'चम्पा'। देखती क्या हूँ कि माँ की शिष्या उसी का एक गुच्छा लिये हुये चली आ रही है। माँ ने अपने कर कमलों से उसे प्रदान किया। वह मेरी अमूल्य अनाशवान धरोहर बन गया। मैंने बड़ी हिफाजत से उन दिव्य पुष्पों को सुरक्षित रखा है। मुझे उनमें माँ की अविरल छवि और स्नेह-सौरभ की सतत अनुभूति होती रहती है।

इस शरीर को छुड़ाने से भी नहीं छोड़ेगा

चित्रा घोष

विश्व के कण-कण में श्री श्री माँ की वाणी अनन्त काल तक झंकृत होती रहेगी, सृष्टि के बन्धन में उद्वेलित चित्त को शान्त करने वाली निराश हृदय में आशा की दीपशिखा को प्रज्वलित करने वाली माँ की मधुक्षरा वाणी है "इस शरीर को छोड़ना आता ही, नहीं इसको छुड़ा देने से भी नहीं छोड़गा।" कैसे प्रेममय स्नेहमय शब्द हैं ये।

हम उनको भूल जाते हैं, हम उनको छोड़ देते हैं, पर वे हमें नहीं छोड़ते। तभी तो युग-युग में दीनवत्सल दीनानाथ अपनी प्रतिज्ञा पुनः-पुनः दुहराते रहते हैं।

आज भी माँ ने वही किया, व्याकुल जीव को सहारा दिया, उसे अनेक सान्त्वना के शब्द सुनाये। न केवल शब्द अपितु माँ ने कृपापूर्ण व्यवहार द्वारा न जाने कितनों के जीवन सुधारे। श्री श्री माँ के पास कोई अपरिचित व्यक्ति आता तो माँ का उससे एसा व्यवहार होता कि वह बहुत दिनों तक यही सोचता रह जाता कि माँ से पहले मेरा परिचय कब हुआ ? क्या माँ ने कभी मुझे देखा है ? पर उनको क्या पता था कि माँ सर्वदा कहती हैं कि "इस शरीर के पास कोई अपरिचित नहीं है।" एक बार की घटना है कि कलकत्ते का एक भक्त परिवार अपनी मोटर द्वारा कहीं जा रहा था। रात का वक्त, गाँव जैसी जगह और वर्षा ऋतु का समय। नदी में बाढ़ आयी हुई थी और अचानक उनकी मोटर रास्ते में कहीं पानी में फँस गई और कीचड़ में धँसने लगी। आस-पास कोई नहीं था। मोटर में बैठे प्राणी संकटापन्न स्थिति में आँख बन्द किये हुये चिन्तामग्न थे। इतने में उनमें से किसी ने देखा कि एक दिव्य देवी मूर्ति उनके मोटर के सामने प्रसन्न मुद्रा में खड़ी हैं। क्षणभर में उनकी मोटर की ब्रेक लगी और जोर का शब्द करती हुई मोटर उछली तथा पास के पेड़ से टकरा गई। इस प्रकार उनकी रक्षा हुई। यहाँ आश्चर्य की घटना

यह है कि उन्होंने इसके पहले माँ के दर्शन नहीं किये थे, परन्तु उस दिन की घटना के बाद वह दिव्य मूर्ति को देखने के लिए वे व्याकुल हो उठे तथा उन्होंने जब माँ के दिव्य दर्शन किये तो उनको सारी बात समझ में आई। जिस माँ की दिव्य लीला ऐसी है जिन्होंने विवाद में, प्रमाद में, प्रवास में, जल में, अनल में, कानन में, विवाद में, रक्षा की है तथा कर रही हैं, क्या वे हमें छोड़ सकती हैं ? यह जीव तो उनका ही अंश है। तभी तो श्रीमद्भगवद्गीता माता कहती है "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतो सनातनः" तभी तो उद्धव से श्रीमद्भागवत में भगवान् कहते हैं—

"विद्या विद्ये मम तनू विद्धयुद्धव शरीरिणाम्
मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया में विनिर्मिते।
एकस्वैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते।
वन्धोऽस्याविद्यया नादिर्विद्यया च तथेतरः॥

हे उद्धव ! विद्या अविद्या से बना यह जीवों का शरीर मेरा ही मानो मोक्ष और बन्धन कराने वाला मैंने ही माया द्वारा बनाया है। मेरे ही एक अंश का अविद्या द्वारा बन्धन होता है तथा विद्या द्वारा मोक्ष।

चराचर के प्राणियों के प्रति साहचर्य सहभाव का दृष्टान्त हमें माँ से मिला है। एक बार माँ की चौकी पर एक चींटा मर गया। माँ ने मामाजी के द्वारा पत्ते पर उसे उठवा कर गंगा में प्रवाह करवाया। सूक्ष्म से स्थूल में अणु में परमाणु में वो माँ सबका ख्याल करती हैं। आज हम क्यों उनका अभाव समझ कर दुखी होते हैं। पूर्ण रूप में जो इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त है क्या उसका अभाव हो सकता है।

पेड़ की शाखाओं से, पल्लवों से, फलों से, फूलों से समय-समय पर माँ का ऐसा व्यवहार होता देखा गया है, मानों वे मूर्तिमन्त विग्रह हों। कई स्थानों पर हमने माँ का ऐसा चित्र देखा है कि पेड़ के बड़े से खोंखले में से माँ का दिव्य हासमय सौम्य मुखमण्डल दीख रहा है। क्या वह साधारण वृक्ष है ? युगों से श्री श्री माँ को अपने में बिठाने के लिए वह इस रूप में अवस्थित था। ऐसा माँ के श्रीमुख से सुना गया है। कइ स्थानों पर ऐसा देखा गया है कि माँ के स्पर्श के

अनन्तर पुरातन वृक्षों की इह लीला समाप्त हो गई तथा माँ ने उसके काष्ठ को महायज्ञ में लगाया। कई स्थानों पर माँ का दिव्य स्पर्श पाकर वृक्ष पुनर्जीवित हो उठे। इस प्रकार माँ की दिव्य लीलाओं का परिचय प्राप्त कर माँ का नित्य आनन्द स्वरूप दर्शन कर हम यदि कहते हैं कि माँ हमें छोड़कर चली गईं तो क्या यह हमारी धृष्टता का परिचायक नहीं है?

अवश्य ही माँ ने हम पर अहैतुकी कृपा की है तथा कर रही हैं और सदा करती ही रहेंगी। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में "भजहु राम विनु हेतु सनेही' का स्वर हमारे तन मन को प्रेमसागर में निमज्जित करानेवाला अक्षय प्रेरणा स्रोत बने यही अभिलाषा है।

संसार में शान्ति की आशा व्यर्थ है। केवल उन्हें लेकर रहने की चेष्टा। कर्त्तव्य ज्ञान से सबकी सेवा करना। संसार तो सुख का स्थान नहीं है। शान्ति की आशा में एकमात्र भगवत् चरण का आश्रय।

—श्री माँ

श्री श्री माँ आनन्दमयी

***श्री दशरथ नारायण शुक्ल**

आनन्दमयी माँ वस्तुतः आनन्दमय थीं। वे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय कोशों को पार कर आनन्दमय सत्ता का साक्षात्कार कर उसी में स्थित थीं तथा सुख-दुःख तथा हानि-लाभ से परे थीं।

यह एक बड़े विस्मय की बात है कि एक व्यक्ति साधारण परिवार से इतना ऊपर उठे कि अनेकों मुख्य मन्त्री, राज्यपाल तथा प्रधान मन्त्री उसके दर्शन के लिए आवें। उसे दर्जनों बड़े-बड़े आश्रमों की व्यवस्था करनी पड़े, फिर भी वह परमानन्द में लीन रहे। एक बड़े परिवार की व्यवस्था करने में ही लोग परेशान हो उठते हैं। साधारण से उच्च अधिकारी भी यह कहते हैं कि क्या करूँ, पूजा के लिए समय ही नहीं मिलता। परन्तु जरा उस व्यक्ति के बारे में सोचिए—जिसको एक मामूली मकान से उठकर बड़े-बड़े आश्रमों का निर्माण करना पड़ा हो-फिर भी वह सदा भगवत सत्ता में लवलीन रहे।

मैंने आनन्दमयी माँ के कई बार दर्शन किए हैं। जब भी उनको देखा ऐसा लगा मानों वे किसी दूसरी सत्ता में ही लीन हैं। उनमें लौकिक व्यवहार के प्रति आसक्ति नहीं थी। सदा ध्यान में तन्मय। इसे उनकी पूर्व जन्मार्जित साधना कही जाय या इसी जन्म की बाल्य-काल या युवावस्था में अजित साधना यह हमारी समझ से परे है। जो भी हो वे एक महान् आत्मा थीं। उन्हें ध्यान करने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता था—वे स्वतः ही ध्यानस्थ रहती थीं, जिस प्रकार से सांसारिक लोगों को अलौकिकता में जाने के लिए प्रयास करना पड़ता है, उसी प्रकार से माँ को ध्यान से लौकिक व्यवहार में आने के लिए प्रयास करना पड़ता था। जब वे बोलती थीं तो ऐसा लगता था कि बोलने में उन्हें अन्यमनस्कता हो रही है। वे बहुत कम

---

* अतिरिक्त सचिव, विकास प्राधिकरण, नगर महापालिका, वाराणसी।

वोलती थीं। उनका प्रयास रहता था कि बहुत कम बोलकर ही काम चला लिया जावे।

लोग वर्षों तक देवी-देवदाओं के दर्शन के लिए प्रयास करते रहते हैं फिर भी कुछ को उनके दर्शन हो पाते हैं तथा कुछ को नहीं। भगवान् के दर्शन के लिए तो लोग जीवनपर्यन्त साधना करते रहते हैं लेकिन हजारों साधकों में एकाध को ही ईश्वर के दर्शन हो पाते हैं। परन्तु आनन्दमयी माँ की साधना इतनी परिपक्व हो चुकी थी कि उन्हें ईश्वर के दर्शन के लिए विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता था। वे एक वार वता रही थीं कि जव वे एक समय एक वड़े बोट पर निवास कर रहीं थी, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपने बहुत से रूप धारण करके वहाँ प्रकट हुए तथा नृत्यलीला करते रहे।

वस्तुतः प्रत्येक मानव में चैतन्य सत्ता आत्मा के रूप में निवास करती है। आत्मा ही जव माया से मुक्त हो जाती है, तो वह परमात्मा हो जाती है। ईश्वर भी वस्तुतः विद्या से आछन्न ब्रह्म है। अतः जव कोई आत्मा माया के आवरण से मुक्त हो जाती है, तो उ।ो ईश्वर साक्षात्कार में कोई वाधा नहीं होती।

आनन्दमयी माँ के वारे में सिद्ध सन्तों की धारणा वड़ी ऊँची थी। गोरखपुर के गीतावाटिका के सिद्ध सन्त राधा वावा अपनी कुटी में आनन्दमयी माँ का चित्र टाँगे हुए हैं। जव मैंने काशी के स्वामी सुखानन्द से माँ के वारे में चर्चा की तो उन्होंने कहा कि वे वन्दनीय सन्त थीं। प्रायः सभी अखाड़ों के सन्त, महन्त उन्हें वड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। कुंभ मेले में, वे लोग अपने जुलूसों के साथ माँ को सबसे आगे सवारी में विठाकर ले जाते थे।

उनका जीवन वस्तुतः धन्य था। पाने योग्य पद को उन्होंने पा लिया था। लक्ष-लक्ष साधक उनसे सतत् प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे। श्री माँ के चरणों में मेरा शत-शत नमन।

श्री श्री माँ के विश्वव्यापक आश्रमों की झलक*

ब्रह्मचारिणी डॉ० गुणिता

अप्रील १९८३

यद्यपि श्री श्री माँ का दिव्य पाञ्च भौतिक श्री शरीर आनन्दमय तथा दिव्यता से युक्त था पर केवल यही माँ का सत्य स्वरूप था और अब उसका अभाव है ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः हम लोगों को, संसार के अनित्यसुख के बन्धन से खींचकर बाहर लाने के लिये ही माँ ने यह जागतिक श्री देह का रूप धारण किया था। माँ अभी भी वैसी ही हैं जैसे कि सर्वदा थीं, माँ के लिये कोई परिवर्तन नहीं है। माँ बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे, सर्वत्र सर्वरूप में व्याप्त हैं—माँ कहाँ नहीं हैं? हम सबको इस सत्य से यथार्थ परिचय करना होगा।

यदि हम पाँच मिनट भी ध्यानस्थ हो माँ का चिन्तन करें तो निःसन्देह रूप में यह पाते हैं कि हम माँ के प्रेम में माँ के आनन्द में पूर्णतया निमग्न हैं। केवल भारत में ही नहीं संसार में सर्वत्र भक्तों ने या तो स्वप्न में माँ के दर्शन किये अथवा सूक्ष्म में किसी-किसी को माँ से मन्त्र एवं निर्देश भी प्राप्त हुये हैं। वास्तव में माँ दूर किसी लोक में नहीं गई है, अपितु प्रत्यक्ष रूप में हमारे साथ ही हैं, आगे भी अभी भी पहले जैसे सक्रिय रूप में समय एवं सीमा की बाधा से रहित निर्बाध रूप में हमारे साथ हैं। यहाँ भक्तों द्वारा प्राप्त पत्रों के कुछ अंश उद्धृत किये जा रहे हैं।

४-३-८३
यू० एस० ए०

---

* नोट—प्रस्तुत विवरण पिछले अप्रील अंक में कतिपय कारणों से प्रकाशित नहीं हो सका। जुलाई में प्रकाशित हो रहे इस शीर्षक के अग्रिम भाग के अन्तर्गत पाठकों के आग्रह पर इसे भी दिया जा रहा है।

"मुझे थोड़ा दुःख का अनुभव हुआ था कि हम फिर कभी भी श्री श्री माँ की प्यारी छवि देख नहीं सकेंगे, परन्तु मेरे जीवन में उनकी उपस्थिति आगे से कहीं अधिक प्रतीत हो रही है, मेरी ध्यान की स्थिति अधिक शक्तिशाली हो रही है, अवश्य ही माँ ने मुझ पर कृपा की है और मैंने सुना है कि मेरे दूसरे बन्धुओं के साथ भी ऐसा ही हो रहा है।

१६-१२-८२
कैलिफोर्निया

कनखल में संयम व्रत के पहले दिन मैंने ध्यान की चेष्टा की पर ध्यान लगाने में असफल हुआ। मैं मञ्च पर रखी हुई माँ की तसवीर देख रहा था, माँ का पूरा चित्र सजीव हो उठा, माँ वहाँ बहुत ही मधुर भाव मे वैठी हुई थीं तथा हम सवको एक मधुर मुस्कान से निहार रही थीं। मैं ध्यान नहीं कर पा रहा था बल्कि माँ को ही देख रहा था। तभी माँ की श्रीमुख की, आकृति शीघ्र परिवर्तित होने लगी तथा एक सेकेण्ड के भीतर पुनः चित्र के अनुरूप हो गई। मैंने प्रारम्भ से लेकर अभी तक के माँ के रूपों को देखा। आखिर में माँ का श्रीमुख दीदीमा के मुख के समान हो गया। तब बाद में मैंने लक्ष्य किया तो वहाँ केवल एक शुभ्र ज्योति थी। काफी देर तक माँ के चित्र के साथ ऐसा होता रहा। मैंने ध्यान करने की चेष्टा की पर पाया कि माँ की उपस्थिति हमारे चारो ओर सर्वत्र है। माँ कहीं भी नहीं गईं। यदि हम थोड़ा अपने हृदय को खोलें तो माँ को वहाँ पायेंगे तथा माँ के निर्देश प्रवाहित होंगे। माँ आप ही भगवान् हो, आप ही शान्ति हो, आप ही प्रेम हो। अपना सर्वस्व माँ को अर्पण कर दो सब ठीक हो जायेगा। मेरी इस संक्षिप्त यात्रा के दौरान कई ऐसी घटनायें घटीं जिनसे मुझे ऐसा अनुभव हुआ।"

पिछली गर्मी में कन्खल में एक विदेशी महिला पहली वार माँ के पास आई थी। तब शाम को दूर से कुछ मिनटों के लिये ही दर्शन होता था। माँ सर्वदा अपने कमरे में लेटी रहती थीं। माँ से बात करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। इतना होने पर भी वह महिला माँ से अतिशय प्रभावित हुई। सम्प्रति उन्होंने एक पत्र में लिखा है।

माँ के प्रति मेरा प्रेम प्रबल से प्रबलतर होता जा रहा है। माँ के

प्रेम ने सबकुछ अधिकृत कर लिया है। वहाँ वाह्य व्यापारों को स्थान नहीं है। माँ मेरी आँखों के सामने चलते-फिरते, सोते-जागते, स्वप्न में सर्वदा हैं। मेरे जीवन के प्रतिक्षण में माँ निवास कर रही है।

इसके परिणाम स्वरूप संसार के विषयों में रूचि घटती जा रही है। आकर्षण, मित्रता, और मनुष्यों के प्रति प्रेम के सम्बन्ध कम तथा अल्प रुचिकर होते जा रहें हैं। मैं अधिक काम नहीं कर सकती। भगवान् का नाम अर्थात् माँ के दिव्य नाम के सिवाय अन्य किसी में रुचि नहीं हैं। मैंने मुश्किल से थोड़ा ही माँ को देखा है पर मुझे ऐसा लगता है कि मेरा भविष्य माँ की कृपा एवं माँ की इच्छा पर निर्भर है। भगवान् के प्रति मेरी जिज्ञासा केवल माँ के प्रति प्रेम से ही पूर्ण हो सकती है।

जब माँ श्री शरीर में चलना-फिरना करती थीं तब सभी माँ के पास जाना चाहते थे। पर अभी हम निरन्तर माँ के पास रहने के लिए व्यग्र हैं इसलिये अभी हम पहले से अधिक माँ के निर्देशों का पालन करने का प्रयास कर रहे हैं। माँ के निर्देश क्या हैं ? "भगवान् का नाम किसी भी प्रकार से स्मरण करते रहो, ध्यान, जप, कीर्तन, शास्त्राध्ययन अथवा सत्संग के माध्यम से।"

श्री श्री माँ के आश्रम पहले से अधिक सक्रिय रूप में कार्यरत हैं। हमें केवल वाराणसी तथा कलकत्ते से विस्तृत सूचना प्राप्त हुई है। पर हमें यह विदित है कि जैसे सरस्वती पूजा १८ फरवरी को, कनखल, देहरादून, दिल्ली, वाराणसी, वृन्दावन, कलकत्ता, अगरतला तथा अन्यान्य आश्रमों में अच्छी तरह अनुष्ठित हुई इसी प्रकार १३ मार्च को शिवरात्रि भी सुन्दरता से सम्पन्न हुई।

कनखल :—

निर्बाध रूप से कनखल में श्री श्री माँ के समाधि मन्दिर में प्रातः सायं पूजा-आरती तथा साथ ही साथ दीदीमाँ के मन्दिर, शिवमंदिर एवं शंकराचार्य मन्दिर में पूजा आरती के साथ प्रातः गीता, चण्डी एवं उपनिषद् पाठ एवं श्रीमद्भागवत व्याख्यान तथा शाम को रामायण पाठ एवं रामायण की व्याख्या होती हैं। श्री श्री माँ की समाधि के सामने एक अस्थायी मण्डप का रूपबनाया गया है, ताकि धूप, वर्षा की बाधा से रहित होकर लोग जप-ध्यान कर सकें। अखण्ड भाव से वहाँ प्रातः ६ बजे से सायं ६ बजे तक जप चलता रहता है।

महीने में एक बार अखण्ड रामायण होता है। अक्तूबर से लेकर अबतक कुल चार भागवत् समाप्त हो चुके। जनवरी के १४ तारीख को संक्रान्ति का उत्सव पद्मनाभ के विराट पूजा द्वारा सम्पन्न हुआ। २६-२७ जनवरी को ब्रह्मचारी गदाधर की वार्षिक तिथि मनाई गई। उस दिन माँ की विशेष पूजा हुई। कुमारी भोजन एवं दरिद्रनारायण भोजन तथा भण्डारा हुआ। १८ फ़रवरी को सरस्वती पूजा एवं १२ मार्च को शिवरात्रि पूजा हुई।

वाराणसी :—

दुर्गापूजा के बाद पूर्णिमा को लक्ष्मीपूजा के अवसर पर स्थानीय भक्त यहाँ एकत्र हुये थे। यहाँ पर अन्नपूर्णा मन्दिर में कालीमाता का विग्रह होने के नाते प्रतिवर्ष यहाँ दिवाली के अवसर पर काली पूजा होती है। यहाँ अन्नकूट का भी उत्सव होता है। करीब ५० वर्षों से अतुल ब्रह्मचारी अन्नपूर्णा मन्दिर के पुजारी हैं, पहले ढाका में तथा बाद में वाराणसी में। अब भी इस वृद्धावस्था में वे अटूट निष्ठा के साथ पूजा करते आ रहे हैं। प्रत्येक अन्नकूट में ५० कि० चावल तथा उसी के अनुसर शाक व्यञ्जनादि होते हैं। साथ ही दाल, खीर मिठाई, फल आदि का विशाल रूप में भोग होता है। यह भोग की सारी सामग्री श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ की कन्याओं द्वारा तैयार की जाती है। कन्यापीठ की छात्राओं द्वारा संयम महाव्रत का अनुष्ठान किया गया तथा गीता जयन्ती का उत्सव भी मनाया गया। प्रतिदिन शाम को कन्यापीठ की ब्रह्मचारिणियाँ गीता पर भाषण दिया करती थीं। २६ दिसम्बर गीता जयन्ती के अन्तिम दिन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल आश्रम दर्शनार्थ आये थे। उसी दिन १२ बेड का (महिला रोगियों के लिये) एक नया विभाग अस्पताल में खोला गया जिसका उद्घाटन भी राज्यपालजी के द्वारा सम्पन्न हुआ। १४ जनवरी पौष संक्रान्ति का दिन सावित्री महायज्ञ की पूर्णाहुति का दिन है। यह सावित्री महायज्ञ वाराणसी आश्रम में १९४७ से १९५० तक अनुष्ठित हुआ जो प्रातः पाँच बजे से सूर्यास्त तक कन्यापीठकी ब्रह्मचारिणियों द्वारा किया जाता है। १२ फरवरी को कन्यापीठ की ब्रह्मचारियों ने गुरुप्रिया दीदी का जन्म दिन पूजा, कीर्तन तथा दीदी के सम्बन्ध में व्यवस्था द्वारा सम्पन्न किया। १८

फरवरी को सरस्वती पूजा हुई तथा २६ फरवरी माघी पूर्णिमा को सत्यनारायण पूजा हुई।

कलकत्ता :—

श्री श्री माँ के महा प्रयाण के बाद से स्वामी चिन्मयानन्दजी ने प्रतिमाह शुक्ल नवमी तिथि को मातृ पूजा, सत्संग, कीर्तन इत्यादि का आयोजन किया जो २७ अगस्त तक पूरे एक वर्षपर्यन्त होगा।

कलकत्ते के भक्तगण प्रति रविवार को विभिन्न व्यक्तियों के घरों में नामयज्ञ करते हैं। उनमें से किसी-किसी के घर में माँ रही भी थीं। श्री प्रतिभाकुण्डु ने अपने जमीन में निर्मित मातृ मन्दिर में श्री श्री माँ की प्रवेश तिथि मनाई जहाँ १९७२ में जोधपुर पार्क में अनुष्ठित भागवत् सप्ताह के अवसर पर माँ पधारी थीं। उन्होंने उसदिन अखंड कीर्तन एवं जप का अनुष्ठान रखा था। शाम को कुमारी छबि बैनर्जी का कीर्तन था। श्री विभूति चक्रवर्ती ने में अपने घर पर माँ के प्रति श्रद्धाञ्जलि के निमित्त उत्सव का आयोजन किया था। उन्होंने स्वयं माँ की पूजा की साथ ही गीत, चण्डी पाठ, अखण्ड कीर्तन, भण्डारा आदि भी हुए। विराट् रूप से दरिद्र नारायण भोजन हुआ तथा उन्हें दक्षिणा एवं वस्त्र दिये गए।

८ फरवरी से २८ फरवरी तक प्रतिदिन वृन्दावन आश्रम के अधि-कारी स्वामी निर्मलानन्दजी ने गीता, भागवत, उपनिषद् तथा माँ के सम्बन्ध में व्याख्यान दिया। पहले १० दिनों तक उन्होंने विशेष हाल में भाषण दिया बाद में विभिन्न स्थानों में। उनका भाषण श्रोताओं के द्वारा आग्रह पर होता रहा। २६ फरवरी को उन्होंने "बंग महिला शिक्षा समिति के वार्षिकोत्सव पर माँ की शिक्षा पर व्याख्यान दिया।

देहरादून :—

किशनपुर आश्रम में गीता, चण्डी, रामायण पाठ एवं सायं कीर्तन तथा मातृ मन्दिर एवं शिव मन्दिर में पूजा प्रतिदिन होती है। प्रति रविवार को कम से कम दो घण्टा कीर्तन होता है। प्रति महीने दूसरे शनिवार तथा रविवार को अखण्ड रामयण पाठ होता है। गीता जयन्ती, सरस्वती पूजा तथा शिवरात्रि पर सम्पूर्ण रात्रि पूजा हुई। श्री श्री माँ के ऊपर के कमरे में जहाँ माँ आखिर के ३५ दिन रहीं,

सम्पूर्ण मौन रखा जाता है। दूर तथा पास से दर्शनार्थी गण इस पवित्र स्थान का दर्शन करने आते हैं।

गतांक से आगे (जुलाई १९८३)

नौमिषारण्य :—

शिवपुराण का संस्कृत में पाठ तथा हिन्दी में व्याख्या नौ दिन तक हमारे पुराण मन्दिर में होंती रही, शिवरात्रि पर इउकी समाप्ति हुई। बहुसंख्यक भक्तगण विभिन्न स्थानों से आये थे। कलकत्ते से भी भक्तगण उत्सव में योगदान देने आये थे।

आगड़तला

सभी पाठकों को यह ज्ञात नहीं होगा कि श्री श्री माँ के दिव्य-शरीर का प्रकाश वर्तमान बांग्लादेश के अन्तर्गत कुमिल्ला जिले में हुआ था, जो पहले त्रिपुरा राज्य का ही एक अंश था। उसी त्रिपुरा राज्य की राजधानी आगड़तला में त्रिपुरावासी असंख्य नर-नारियों के सादर आग्रह पर ही श्री श्री माँ अत्यन्त अस्वस्थ अवस्था में भी विगत मार्च, १९८२ में पधारी थीं, जो माँ की साठोत्तरी दीर्घ अखण्ड भ्रमण-लीला का अन्तिम चरण था। इसीलिये आज आगड़तला हम सभी के लिए परम पवित्र तीर्थस्थल है।

आगड़तला जाने के समय श्री श्री माँ के साथ संगमरमर की एक अति सुन्दर सरस्वती प्रतिमा आगड़तला के आश्रम में प्रतिष्ठित करने के लिए लाई गई थी। श्री श्री माँ ने उसी समय वसन्तपञ्चमी को विशेष परिपाटी से सरस्वती पूजा के अनुष्ठान का निर्देश दिया था। स्थानीय कार्यकारिणी समिति एवं भक्तों ने मिलकर इस वर्ष सरस्वती पूजा का अनुष्ठान अतीव भव्य रूप से किया। प्रायः ३००-४०० भक्तों ने आश्रम में प्रसाद-ग्रहण किया।

पहले सन् १९८० की वसन्तपञ्चमी को ही श्री श्री माँ आगड़-तला के नवनिर्मित आश्रम में जानेवाली थीं किन्तु कतिपय कारणवश उनका कार्यक्रम बदल गया। जिस स्थान में (श्री श्री माँ के कमरे में) आज संगमरमर की सरस्वती प्रतिमा प्रतिष्ठित है, उसी स्थान

में श्री श्री माँ ने मृण्मयी सरस्वती देवी की पूजा करने को कहा था। सन् १९८० से वहाँ नियमित रूप से वसन्तपञ्चमी को सरस्वती देवी की पूजा होने लगी थी। सन् १९८२ की पूजा से पहले ही माँ ने आदेश दिया था कि प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष सरस्वती मूर्त्ति विसर्जित न करके सुरक्षित रख दी जाय। ३१ मार्च, सन् १९८२ को वासन्ती पूजा की महासप्तमी के दिन श्री श्री माँ की उपस्थिति में उसी स्थल पर संगमरमर की सरस्वती प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई। यह प्रतीत होता है कि आगड़तला के आश्रम पर विद्या, सङ्गीत और ब्रह्मविद्या की अधिष्ठात्री देदी सरस्वती की विशेष कृपा है।

श्री श्री माँ के आश्रम के पास ही श्री श्री उमा-महेश्वर का विशाल मन्दिर अवस्थित है, जिसे त्रिपुरा के महाराज एवं महारानी के आग्रह पर राज्य सरकार ने श्री श्री आनन्दमयी संघ को दे दिया है। इस विख्यात मन्दिर में अगणित भक्तजनों का नित्य समागम होता रहता है।

नैमिषारण्य—

पाठकों को स्मरण होगा कि जुलाई १९८१ में श्री श्री माँ की उपस्थिति में नैमिषारण्यस्थित माँ के आश्रम में एक छोटे से शिव मन्दिर का उद्‌घाटन हुआ था, बम्बई निवासी माँ के पुराने भक्त श्री कोटेचा के दिवङ्गत पुत्र की स्मृति में नर्मदा से प्राप्त शिवलिङ्ग "श्री जगदीश्वर महादेव" की स्थापना की गई। माँ ने निदेश दिया था कि शिवरात्रि को शिवजी का विशेष पूजन किया जाय। श्री माँ के आदेश का पालन सुष्ठु रूप से किया जाय, यही सबका ख्याल था परन्तु श्री श्री माँ की अप्रकट-लीला के कुछ समय पश्चात् माँ ने किसी आश्रमवासी को प्रेरणा दी कि इस वर्ष शिवरात्रि को नैमिषारण्यस्थ शिवजी की समुचित विधि से पूजा की जाय। बाद में सबसे पूछताछ करने से पता चला कि १९८२ की शिवरात्रि को जैसा माँ का निर्देश था ठीक-ठीक वैसा पूजन नहीं हुआ। कुछ त्रुटि रह गई थी। इस अपराध के प्रक्षालन के लिए इस वर्ष नौ दिन शिव-पुराण का पारायण भी हुआ, जिसकी समाप्ति शिवरात्रि के दिन हुई। नित्य अपराह्न-बेला में 'पौराणिक तथा वैदिक अध्ययन एवं अनुसंधान, नैमिषारण्य" के प्राध्यापक डॉ० बी० एन्० त्रिपाठी ने अत्यन्त सुललित भाषा में शिव-पुराण की व्याख्या की। शिवरात्रि

के दिन प्रातःकाल ग्यारह पण्डितों ने शिवमन्दिर में रुद्राभिषेक किया। वहाँ सारी रात शिवजी का पूजन हुआ और साथ-साथ हॉल में सीतापुर, हरिद्वार, लखनऊ एवं कलकत्ते से आगत भक्तों ने भी पूजन किया। इस प्रकार इस वर्ष श्री श्री माँ के आदेश का पूर्ण रूप से पालन किया गया।

३ मई १९८३ की रात को श्री श्री माँ की पूजा के साथ-साथ जन्मोत्सव के कार्यक्रमों का श्रीगणेश हुआ, जिसकी समाप्ति २९ मई की रात को तिथिपूजा के पश्चात् हुई। तिथिपूजा के दूसरे दिन भण्डारा हुआ। श्री माँ के जन्मोत्सव में विभिन्न स्थान के अनेक भक्तों ने योगदान किया।

वाराणसी—

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी वाराणसी के आश्रम में १९ अप्रैल से २२ अप्रैल, १९८३ तक अतीव भव्य रूप से वासन्ती पूजा का अनुष्ठान किया गया, जिसमें ब्रह्मचारी निर्वाणानन्दजी ने स्वयं देवी का पूजन किया। हमारे आश्रमवासी साधु-ब्रह्मचारियों ने कनखल एवं अन्य स्थानों से आकर इस उत्सव में योगदान किया, स्थानीय भक्त भी बहुत अधिक संख्या में एकत्रित हुए थे।

३ मई की रात को "श्री श्री माँ आनन्दमयी कन्यापीठ" की छात्राओं तथा अध्यापिकाओं ने मिलकर अत्यन्त उत्साह, श्रद्धा एवं भक्ति से श्री श्री माँ की जन्मदिवसीय पूजा का आयोजन किया। पूजामण्डप अत्यन्त आकर्षक ढंग से सजाया गया था। उसके दूसरे दिन से २९ मई तक नियमित रूप से प्रातःकाल से रात्रिपर्यन्त मङ्गल आरती, उषाकीर्तन, पाठ, भोग, सन्ध्याकालीन आरती व कीर्तन इत्यादि कार्यक्रम अत्यन्त सुन्दर ढंग से सम्पन्न किये जाते रहे। २९ मई की रात्रि को अति सुचारुरूप से श्री श्री माँ की पूजा की गई। काशीनिवासी अनेक भक्त पूजा में सम्मिलित हुए। ३० मई को सबने प्रसाद-ग्रहण किया।

कलकत्ता—

श्री तरुण व रत्ना गोस्वामी के आवास में ५ व ६ मार्च को अत्यन्त सुन्दर ढंग से नाम-यज्ञ का आयोजन किया गया था। इस उत्सव में कलकत्तानिवासी प्रायः सभी भक्तों ने योगदान किया।
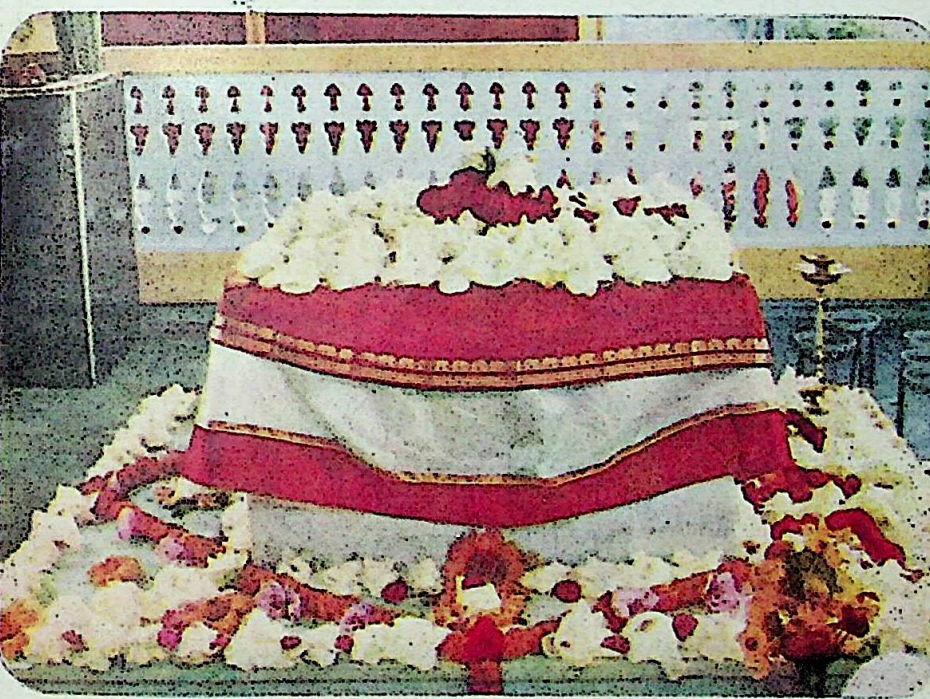
Sri Sri MA's Samadhi at Kankhal Asram.
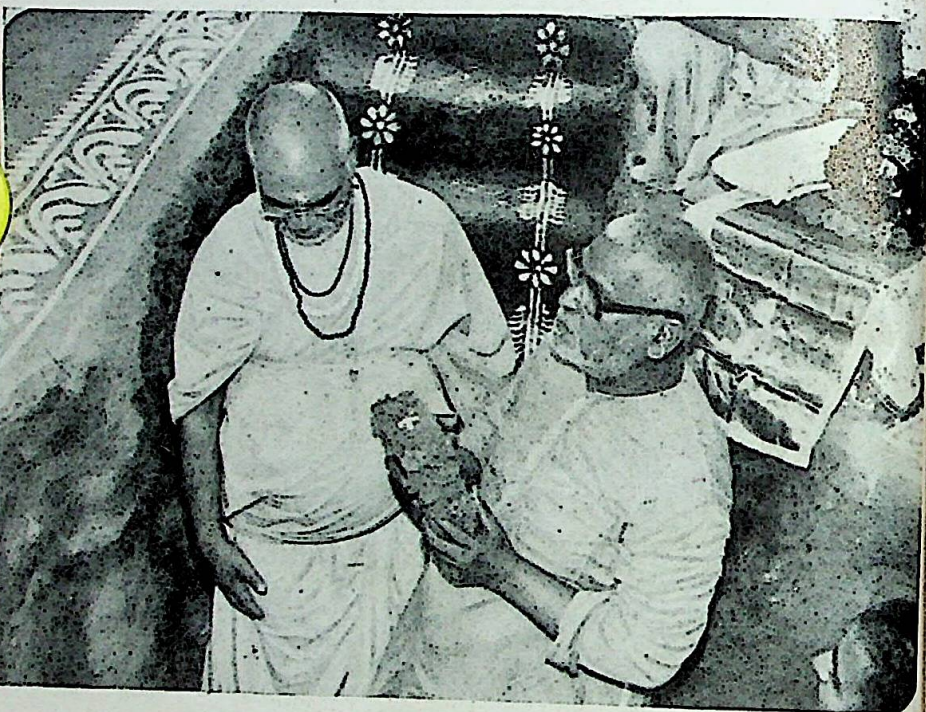
The first brick sanctified earlier by the touch of feet of Sri Sri MA being laid in the foundation of Matri Mandir at Kankhal by Mahamandaleswar 1008 Swami Vidyanandaji of Kailash Asram. Swami Swarupanandaji, the additional General Secretary of the Sangha is seen on the right.

श्री बी० घोषाल ने १६-१७ अप्रैल को तथा श्रीमती चित्रा ठाकुर ने २६ अप्रैल को नाम-यज्ञ का आयोजन किया।

३ मई को श्री माँ की पूजा शहर के भक्तों के घरों में तथा २९ मई को तिथिपूजा आगड़पाड़ा के आश्रम में सर्वाङ्ग सुन्दर रूप से सम्पन्न हुई। ३० मई को भण्डारा हुआ।

कनखल—

जनवरी की आनन्दवार्ता में ही यह सूचित किया गया था कि कनखल में मातृ-मन्दिर के निर्माण के लिए कई प्रतिष्ठित स्थापत्य शिल्पियों से मन्दिर की डिजाइन बनाने का अनुरोध किया गया था। करीब छः व्यक्तियों ने इस कार्यभार को सहर्ष स्वीकार किया। श्री एन० के० कोठारी, श्री ए० पी० कनभिण्डे, श्री पी० एल० वर्मा एवं श्री जनार्दन शास्त्री इत्यादि शीर्षस्थानीय स्थापत्य शिल्पियों से अनुरोध किया गया है कि वे आश्रमवासी साधुओं के साथ विचार-विमर्श करके मन्दिर की डिजाइन बनायें।

यद्यपि इस वारे में अब तक कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया, तथापि १५ मई को अक्षयतृतीया के पुण्य दिवस में मन्दिर के भित्ति-स्थापन का निश्चय हुआ, क्योंकि अधिकतर हमारे आश्रम में मन्दिरों का भित्ति-स्थापन इसी दिन होता चला आ रहा है। श्रीमती इंदिरा गांधी को भी इस अनुष्ठान में आमन्त्रित किया गया।

शास्त्रीय विधि के अनुसार समाधि के उत्तर-पूर्व कोण में मन्दिर की शिला-स्थापना के लिये एक गह्वर खोदा गया। वहाँ समुचित विधि-विधान से पूजा-हवन इत्यादि का अनुष्ठान किया गया। कैलाशाश्रम के महामण्डलेश्वर श्री विद्यानन्द स्वामीजी महाराज तथा महानिर्वाणी अखाड़ा के महन्त श्री गिरिधर नारायण पुरीजी महाराज से इस पुनीत अवसर पर कृपापूर्वक उपस्थित रहने के लिये विशेष रूप से प्रार्थना की गई थी, अन्य अखाड़ों के प्रतिनिधि भी उस समय वहाँ उपस्थित थे। प्रधान मन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी मुख्य मन्त्री तथा उच्चपदस्थ अफसरों के साथ 'हेलिपेड' से सीधे श्री श्री माँ की समाधिस्थल पर पहुँचीं और उन सभी ने माल्यार्पण किया। इसके पश्चात् उन्हें पण्डाल में लाया गया, जहाँ वह महिलाओं के साथ कुछ देर बैठीं।

"पौराणिक तथा वैदिक अध्ययन एवं अनुसन्धान संस्थान नैमिषारण्य" के भूतपूर्व प्राध्यापक डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री के द्वारा विरचित हिन्दी व्याख्या सहित तथा डॉ० वी० डी० राकेश द्वारा लिखित आलोचनात्मक भूमिका सहित 'मार्कण्डेय पुराण' का श्रीमती इंदिरा गांधी के हाथों से विमोचन हुआ। श्री श्री माँ के द्वारा प्रेरित होकर ही डॉ. डी. शास्त्री ने उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन किया एवं पूज्य माँ को ही उन्होंने यह पुस्तक समर्पित की। इसमें श्री माँ का चित्र है तथा इसकी बँधाई अत्यन्त आकर्षक है। श्रीमती गांधी ने इस ग्रन्थ की कुछ प्रतियों का वहाँ उपस्थित महात्माओं में वितरण भी किया। इसके बाद उन्हें तथा महात्माओं को उस गह्वर में ईंट रखने के लिये बुलाया गया।

इस प्रसंग के क्रम में एक घटना विशेष उल्लेख किया जा रहा है। कुछ वर्ष पहले की बात है, तब स्वामी स्वरूपानन्दजी आगड़पाड़ा के आश्रम के सञ्चालक थे। उनके एवं कुछ कलकत्तावासी भक्तों के मन में एक मातृ-मन्दिर के निर्माण की अभिलाषा हुई। सन् १९७५ में जन्मोत्सव के अवसर पर जब श्री श्री माँ कलकत्ते में उपस्थित थीं तो एकदिन रात को करीव ढाई वजे माँ ने स्वामी स्वरूपानन्दजी को बुलाया तथा उन्हें दीदीजी जिस स्थान में मन्दिर वनवाना चाहती थीं, वह स्थान दिखाने को कहा। स्वामीजी ने तभी श्री माँ को वह स्थान दिखला दिया। अगले वर्ष जुलाई में गुरुपूर्णिमा के समय स्वामीजी कनखल गये। वे श्री माँ की पूजा करना चाहते थे। तब माँ ने उनसे कहा—"यह बहुत पवित्र मुहूर्त है, तुम ईंट लाओ", वे अच्छी तरह धुले हुए पाँच ईंट लाये। श्री माँ अपने कमरे में चौकी पर इन ईंटों के ऊपर पैर रखकर बैठ गईं और पूजा होने लगी। स्वामी स्वरूपानन्दजी इन ईंटों को अपने साथ कलकत्ता ले गये तथा इनको बहुत सावधानी से रख दिया।

मार्च सन् १९७६ की होली के अवसर पर जब स्वरूपानन्दजी वृन्दावन आए तो अपने साथ एक सुवर्णनिर्मित छोटे से सर्प को ले आये जिसकी आँखें पद्मरागमणि की थीं। वे पञ्चरत्न—हीरा, पद्मरागमणि, नीलकान्तमणि, पन्ना तथा पोखराज भी लाये थे। मन्दिर की भित्ति में रखने के लिये उन्होंने इनका संग्रह किया था। माँ ने उँगली में उस कुण्डलीकृत सर्प को अँगूठी की तरह पहना तथा रत्नों का स्पर्श किया बाद में उन सबको स्वामीजी को देते हुए कहा—"अभी मंदिर
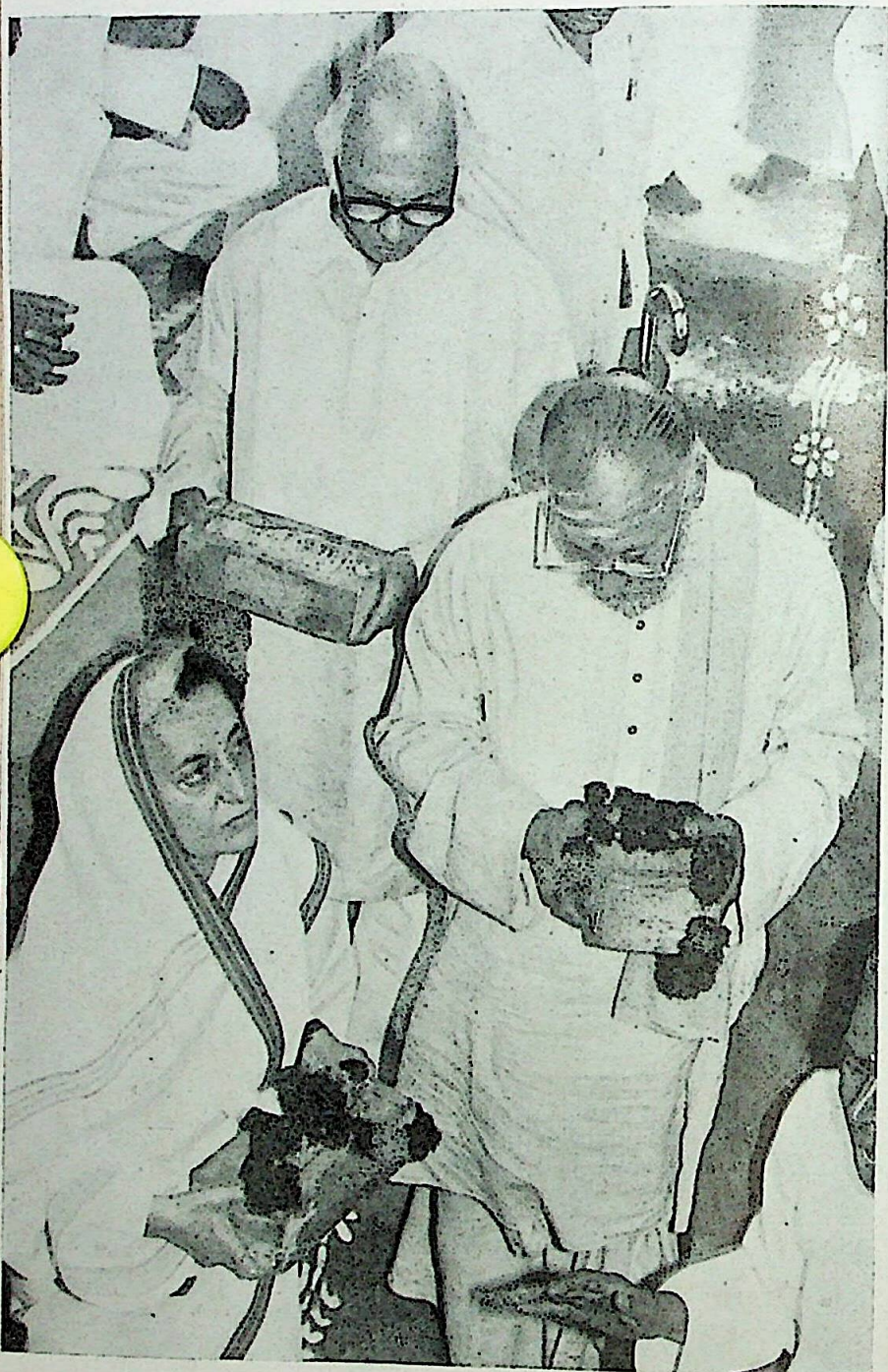
Sm. Indira Gandhi, Sri Sripati Misra, Chief Minister of U. P. and Girdhar Narayan Puri of Mahanirvani Akhara laying each a sanctified brick in the foundation—one after the other. The fifth brick was laid by Swami Nirbananandaji of Sri Sri Ma Anandamayee Asram (not seen in the picture).

मत बनाओ, बाद में बनाओ।" स्वामीजी वह सर्प तथा रत्न अब तक सावधानी से अपने पास ही रखे हुए थे। वे सब कनखल के मातृ-मन्दिर की भित्ति में रख दिये गए। स्वामीजी ने कलकत्ते में तार कर दिया तो एक भक्त श्री श्री माँ के चरण-स्पर्श से पूत वे पाँच ईंट भी ले आए। वही पाँच ईंटे १५ मई को भित्ति-स्थापन के समय रखी गयीं। प्रथम ईंट महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानन्दजी महाराज के द्वारा रखी गयी, द्वितीय श्रीमती इन्दिरा गांधी के द्वारा, तृतीय ईंट उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्रीपति मिश्र के द्वारा, चतुर्थ महन्त श्री गिरिधर नारायण पुरी महाराजजी के द्वारा एवं पञ्चम ब्रह्मचारी श्री निर्वाणानन्दजी के द्वारा।

उपर्युक्त अनुष्ठान के बाद श्रीमती गांधी अतिरुद्र-महायज्ञ के स्थायी मण्डप में गईं, जो अभी भी निर्माण दशा में है। वहाँ से वे श्री माँ के पुराने निवासस्थान में गईं और वहाँ एकान्त में कुछ देर बैठीं वहाँ उन्हें मुख्य मन्त्री के साथ जलपान कराया गया। अफसरों को भी शीतल पेय तथा प्रसाद दिया गया और महात्माओं को फल के पैकेट दिये गए। पूरा कार्यक्रम बहुत ही अच्छी तरह सम्पन्न हुआ एवं सबने व्यवस्था की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

कनखल में ४१ मई से २१ मई तक देहरादून के दिवंगत दो पुराने विशिष्ट भक्तों की स्मृति में श्रीमद्भागवत-सप्ताह का आयोजन किया गया। उनमें से एक हैं स्वर्गीय श्री परशुराम की पत्नी तथा दूसरे हैं स्वर्गीय श्री महारतनजी के भाई इन दोनों परिवारों के लोगों ने वर्षों से आश्रम की बहुत सेवा की है।

१७ मई को आद्यगुरु श्री शंकराचार्यजी के जन्मदिवस पर हॉल में श्री शंकराचार्यजी के वेदीमूल में उनकी पूजा की गई, इसके पश्चात् संन्यासाश्रम के महामण्डलेश्वर स्वामी श्री ब्रह्मानन्दजी महाराज ने आधा घण्टा प्रवचन किया। तत्पश्चात् साधुओं को भोजन कराया गया और उन्हें वस्त्र तथा रुपये भेंट में दिये गए।

२० मई को श्री श्री भोलानाथजी के तिरोधान-दिवस पर उनकी पूजा की गई तथा साधुओं को भोजन कराया गया।

श्री श्री माँ का जन्मोत्सव

कनखल में २३ मई से ३० मई तक श्री श्रीमाँ के जन्म-महोत्सव का अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। अन्त में ३१ मई को नाम-यज्ञ की परिसमाप्ति के साथ-साथ उत्सव की भी समाप्ति हो गई। यद्यपि गत वर्ष की तरह इस वर्ष उतनी संख्या में भक्त जनों का समागम नहीं हुआ, तथापि यह ज्ञातव्य है कि देश के विभिन्न शहरों में स्थित हमारे आश्रमों में आश्रमवासी तथा स्थानीय भक्तों ने मिलकर बड़े धूमधाम से श्री श्री माँ के जन्मोत्सव का अनुष्ठान किया। इसके बावजूद २७ तारीख से अनेक भक्त आने लगे एवं देखते ही देखते भारत के कोने-कोने से बहुत लोग आकर एकत्रित हो गये।

प्रत्येक दिन प्रभातवेला में साढ़े चार बजे से सत्सङ्ग का कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता था। रोज नियमित रूप से प्रातःकाल मंगल आरती, उषा कीर्तन इत्यादि होते थे, फिर समाधि-स्थल के सामने गीता, दुर्गासप्तशती एवं विष्णु सहस्रनाम का पाठ होता था। रोज प्रातःकाल ७ से १० बजे तक सत्सङ्ग-हॉल में वृन्दावन की रासपार्टी कृष्ण-लीला का अभिनय करती थी। अपराह्न में दिव्य-जीवन-संघ के सभापति श्री श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज, महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्द जी महाराज, महामण्डलेश्वर श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज एवं अन्यान्य महात्माओं के अमृतमय प्रवचन होते थे। सायंकाल समाधि में आरती होती थी तथा बाद में प्राण-स्पर्शी कीर्तन होता था। अन्त में रात्रि को साढ़े नौ बजे श्री श्री माँ के वीडियो फिल्म दिखाये जाते थे।

२६ मई को प्रातःकाल १०८ कुमारियों तथा कुछ वटुकों की पूजा की गई एवं उन सबको भोजन कराया गया। शतचण्डी पाठ की समाप्ति के अवसर पर फिर से कुमारी पूजा हुई। पूर्णिमा की रात्रि को महिलाओं ने सारी रात कीर्तन किया। श्री श्री माँ के घर में बैठकर आगरा की विशिष्ट रामायण-पार्टी ने अत्यन्त सुमधुर स्वर से ४८ घण्टों तक अखण्ड रामायण-गान किया। श्री श्री माँ के जन्मोत्सव के अन्तिम दिन हॉल में महात्माओं की आरती उतारी गई एवं उन्हें भोजन कराया गया।

सन् १९५६ में वाराणसी में श्री श्री माँ के षष्टितम जन्मोत्सव के अवसर पर अष्टधातु की एक विशाल सिंहमूर्त्ति बनाई गई थी, जिसकी पीठ पर चाँदी का एक सिंहासन है। इसको बनाने में एक विशेष कारण है--पूज्य स्वामी कृष्णानन्द अवधूतजी ने श्री श्री माँ को 'सिंहवाहिनी आद्याशक्ति' के रूप में दर्शन किया था। अतः उन्हीं की प्रेरणा से यह विशाल सिंह-मूर्त्ति बनाई गई थी। उस वर्ष जन्म-दिन की पूजा के समय बार-बार प्रार्थना करने पर भी माँ सिंह पर चढ़कर चाँदी के सिंहसन पर नहीं बैठी सीढ़ी पर ही बैठी रहीं। तिथिपूजा की रात को हरिबाबाजी एवं अवधूतजी के बहुत आग्रह करने पर माँ सीढ़ियों से चढ़कर सिंहासन पर लेट गईं। उसके बाद वह सिंहासन फिर कभी नहीं निकाला गया था। इस बार विशेष प्रयत्न से वह वाराणसी से कनखल लाया गया। तिथिपूजा की रात को सत्सङ्ग हॉल में वह सिंहासन रखा गया, जिस पर माँ की दो तस्वीरें बैठाई गईं। सजावट अत्यन्त प्रशंसनीय थी। पूजा अत्यन्त शान्त तथा भावगम्भीरमय वातावरण में सम्पन्न हो रही थी। साथ-साथ हृदय को द्रवीभूत करनेवाला भाव-भक्तिमय भजन-कीर्तन चल रहा था तथा श्री श्री माँ के अतिपावन जन्म-मुहूर्त्त में आधा घण्टा सामूहिक ध्यान हुआ। बाद में कुमारी पूजा और हवन सम्पन्न हुआ। अन्त में सभी को माँ के समाधि-स्थल में प्रवेश कर प्रणाम करने की अनुमति दी गई।

यद्यपि गत वर्ष माँ जन्मोत्सव के दिनों में अपने आवास से कभी नहीं निकली थीं तथापि सर्वत्र सर्वदा सबमें माँ की उपस्थिति की अनुभूति की गई थी। इस वर्ष तो माँ की उपस्थिति और अधिक अनुभूति हुई। माँ हमारे साथ सर्वदा सर्वत्र विद्यमान रहीं।

देहरादून

सन् १९३६ में बंगाल के बाहर सर्वप्रथम किशुनपुर में (देहरा-दून में) श्री श्री माँ के लिए आश्रम बनाया गया था और अव्यक्त-लीला के लिए भी माँ ने इसी स्थान को चुना। यहाँ अत्यन्त भक्ति तथा प्रेमपूर्वक इस वर्ष भी माँ का जन्मोत्सव मनाया गया। श्रीमती शान्ति सबरवाल ने अपनी परिणत अवस्था के बावजूद आश्रम में २३ मई से ३० मई तक समयोचित कार्यक्रमों की व्यवस्था की।

उषाकीर्तन तथा पाठ इत्यादि रोज ठीक समय पर होता था एवं प्रातःकाल साढ़े आठ से ग्यारह बजे तक चण्डी पाठ एवं पूजा होती थी। सन्ध्याकाल में साढ़े पाँच से सात बजे तक भक्त-जन सत्सङ्गहाल में भजन-कीर्तन का आनन्द लेते थे। गौडीय मठ के भक्तों ने दो दिन आश्रम में सुमधुर भजन किया तथा उनमें से एक व्यक्ति ने संक्षिप्त भाषण दिया। एक दिन देहरादून के भूतपूर्व डी० एम० श्री दीक्षितजी ने श्री श्री मां की परम पावन जीवनी पर सारगर्भित भाषण दिया। प्रसिद्ध गायक और वक्ता प्रज्ञाचक्षु श्री मोटवानी ने रामायण पर तथा कार्नेल शर्मा ने 'योग एवं साधना' पर अपने विचार प्रगट किए। सायंकाल ७ से ८ बजे तक श्री मां के कक्ष में जप किया जाता था एवं तत्पश्चात् मां की आरती होती थी।

२६ मई को १ बटुक एवं ७ कुमारियों की पूजा हुई एवं पश्चात् उन्हें भोजन कराया गया। भक्तों ने भी माँ का प्रसाद पाया। दूसरे दिन एक भक्त के हाथ कुष्ठरोगियों के लिए भोजन भेजा गया और २८ मई को साधु-भण्डारा हुआ। २९ तारीख को प्रातःकाल अखण्ड रामायण-गान प्रारम्भ हुआ, जिसकी समाप्ति ३० मई के मध्याह्न में हुई। २९ की रात को ३ बजे मातृ-मन्दिर में बहुत ही सुन्दर ढंग से माँ की पूजा की गई। बाद में कुमारी पूजा भी हुई। ३० मई को भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।

सप्ताह भर बहुत बड़ी संख्या में स्थानीय भक्त आश्रम में आते रहे। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न स्थानों से कनखल में आए हुए भक्त वृन्द भी दो या तीन दिन के लिए किशनपुर आश्रम में आते रहे। सभी भक्त आश्रम के शान्त एवं आनन्दमय वातावरण से प्रभावित हुए। यहाँ सभी ने श्री श्री माँ की स्नेहपूर्ण उपस्थिति का अनुभव किया।

इस प्रकार श्री श्री माँ का जन्मोत्सव वृन्दावन, राँची, पूना एवं अन्य आश्रमों में भी मनाया गया।

यह प्रतीत होता है कि श्री माँ अब पहले से भी अधिक सक्रिय हो गई हैं। उनकी उपस्थिति, उपदेश एवं अनुप्रेरणा से सर्वत्र सभी प्रभावित हो रहे हैं जो उनके लिए यथार्थ रूप से लालायित हैं।

स्वामी श्री चिदानन्द जी ने अपने भाषण में कहा—"पहले श्री माँ का एक ही शरीर था, पर अब माँ अनेक शरीरों के माध्यम से कार्य कर रही हैं।"

१२ अक्तूबर से १६ अक्तूबर तक दुर्गा पूजा तथा २१ अक्तूबर को लक्ष्मी पूजा सम्भवतः कनखल के आश्रम में होगी। ४ नवम्बर को दिल्ली के आश्रम में कालीपूजा होगी। संयम सप्ताह का अनुष्ठान १३ नवम्बर से १९ नवम्बर तक होगा, किन्तु स्थान अभी तक निश्चित नहीं हुआ है।

भगवन् नाम एवं भगवत् चिन्ता के अलावा पृथ्वी में शान्ति की आशा नहीं है। कर्त्तव्य को प्रधान बनाना। जो सर्वदुःख हरण करते हैं, जहाँ राम, वहीं आराम। जहाँ नहीं राम, वहाँ व्याराम (बीमारी)।

—श्री माँ

वाक्य पुष्पाञ्जलि

डॉ० भक्तिसुधा मुखोमाध्याय*

परमाराध्या जगत्पूज्या श्री श्री आनन्दमयी माँ के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे स्वर्गीय श्री कुञ्जमोहन मुखोपाध्याय के रामापुरा स्थित भवन में प्राप्त हुआ था। अपने माता-पिता के साथ मैंने जब माँ को देखा तब वे समाधि-अवस्था में लेटी थीं। माँ के शरीर के दोनों ओर लम्बे-लम्बे काले बाल पड़े हुए थे। उनकी भव्य गौर कान्ति, माथे पर सिन्दूर का रक्ताभ तिलक, हाथों में सोने की चूड़ियाँ और गले में बड़ी सी स्वर्णनिर्मित मुण्डमाला। इस स्वरूप का मेरे ७-८ वर्ष के बालहृदय में रेखापात तो अवश्य हुआ लेकिन उसे भक्तिभाव नहीं कह सकती। शिशुमन आभूषण और सौन्दर्य से आकर्षित होता ही है। मुझे लगता है कि मेरा मन भी उसी प्रकार से मुग्ध हुआ था। पुनः माँ का दर्शन एक बार रामापुरा में ही 'हरि की बंगाली धर्मशाला' में हुआ था। समय का मुझे ठीक स्मरण नहीं है, पर लगभग १९३७-३८ की बात है।

इसके बाद सन् १९४५ में भदैनी आश्रम के निर्माण के अनन्तर (उसका पूरा निर्माण नहीं हुआ था) जब प्रथम वासन्ती (चैत्र शुक्ल पक्ष की) देवी पूजा हुई, तब पूजा-मण्डप में मस्तक पर चूड़ा धारण युक्त शुभ्रवसना माँ का दर्शन हुआ था। वासन्ती भगवती के सामने शुभ्रवसना हेम कान्ति माँ, बिना आभूषण से भी राजराजेश्वरी के समान लग रही थीं। इस के बाद अनेकों बार उपर्युक्त आश्रम में ही माँ का झांकी दर्शन होता रहा। उन दिनों मैं आश्रम से बहुत दूर रहती थी, अतः जाना कम होता था। १९५३ से जाना-आना पहले से अधिक हुआ। तब आश्रम की प्रशस्त छत पर हरिबाबा की कीर्तन पार्टी का कीर्तन, सत्संग इत्यादि सुनने का सौभाग्य भी हुआ। इससे पाठक यह न सोचें कि मैं माँ के पास जाती थी और उनसे बातें किया करती थी। माँ को देखने के लिए, माँ की अमृतमयी वाणी

---

* अवकाश प्राप्त रीडर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

सुनने के लिए इच्छा तो बहुत होती थी लेकिन वाधाप्राप्त होने पर भी, 'मैं माँ के पास जा कर बैठूंगी, उनके साथ-साथ चलती रहूंगी' ऐसा दुराग्रह मेरा कभी नहीं था। हाँ, समय बीतने के साथ-साथ कई बार पूजा की सामग्रियाँ ले जा कर माँ की पूजा करने की बड़ी इच्छा होती थी। और दीदी (गुरुप्रिया देवी) की कृपा से पास जाकर पूजा करने में सफलता मिलती थी। बाधा डालनेवाले लोग बाधा डालते रहे और मेरा अनुशासन मानकर चलने का स्वभाव पूर्ववत् बना रहा। और जब माँ की अनन्त कृपा की वर्षा अपने आप हुई, तब सफलता भी मिली, माँ की स्नेहमधुर दृष्टि, जिसका वर्णन भाई जी ने 'नयनसर सिजाभ्यां स्नेहराशीन किरन्तीं' करके किया, देखने से चित्त आह्लादित हो उठता था, शान्ति से मन भर जाता था। उनकी अकथित वाणी ही चित्त में शान्ति का प्रलेप दे देती थी। भले ही, भाग्यशाली लोग माँ से दीर्घ समय तक बात करते रहें, लेकिन मैं नीरव निस्पन्द रह कर माँ को दूर से देखा करती थी। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता की एक पंक्ति ऐसी है 'आमि तव स्नेहवचन शुनिआ पेयेछि स्वरगसुधा,' मेरे लिए यह पंक्ति बदल कर ऐसी हो गई 'आमि तव स्नेहकरुण नयने पेयेछि स्वरगसुधा'। उसमें भी कभी-कभी प्रतिवन्ध आ जाने से हृदय में एक व्याकुल क्रन्दन उमड़ आता था। लेकिन माँ का चुम्बकीय आकर्षण ऐसा था कि दूसरे दिन बिना गए रह नहीं सकती थी।

माँ के श्रीमुख से 'पूर्णब्रह्म नारायण' ऐसा करके अपना परिचय निकल आया था। एक बार कहीं माँ के नीचे उतरने का प्रश्न आया था। तब भक्तों ने पूछा "माँ वहुत Steps हैं। क्या आप उतरेंगी?" माँ नेकहा "बहुत Steps तो उतर ही चुकी हूँ।" इससे यही इङ्गित होता है कि माँ सन्तातों के उद्धार के लिए नित्यधाम से उतर कर आयी हैं। पुनः एक बार 'तीन सौ व्यक्ति के लिए बनाया गया भोजन चार सौ को कैसे परोसा जायगा,' यह प्रश्न होने से माँ ने कहा था "तुम शुरू कर दो न, हम तो हैं न।" माँ ने यह भी कहा "माँ ही तो सभी के अन्दर हैं।" और एक बार माँ बोलीं "बाहर का लाड-प्यार न दिखाने पर भी यथार्थतः माँ हैं, और रहेंगी, हटाने पर भी वह नहीं हटेंगी।" उनको यह भी कहते सुना गया "मैं कहो, मां कहो—भिन्न होने पर भी अभिन्न—अभिन्न होने पर भी भिन्न।" कैसा सुन्दर द्वैताद्वैतवाद।

भाईजी के मातृदर्शन में ऐसा दिया हुआ है कि माँ से एक बार पूछा गया क्या माँ कालीजी हैं और इसके उत्तर में माँ ने कहा था "तुम लोगों के अपने-अपने संस्कार से देवी-देवताओं का दर्शन होता है। ठीक है मैं तो जैसी हूं वैसी रहूंगी, तुम जो भी सोचते हो सब ठीक है।" फिर भी माँ ने कहा—"तुम तो सभी देवताओं की मूर्ति हो और तुम्हारा आविर्भाव भी मुझसे हुआ है। मैं तो सारे जगत का समाहार हूँ।" (Ibid, P.51-52)

इसी प्रकार माँ अपने को छिपा कर रखने का प्रयत्न करती थीं पर उनका ब्रह्मस्वरूप, सगुण ब्रह्म ईश्वर स्वरूप तथा अद्वय रूप से निखिलव्यापिक रूप भक्तों से छिपा नहीं है। एक बार माँ दीदी के साथ टहलते समय अपने एक हाथ से दूसरे हाथ को इस प्रकार से मरोड़ने लगीं कि ऐसा लगा जैसे हाथ अभी टूट जायगा। माँ की आँखें भी अश्रु से भर गईं। दीदी ने किसी तरह से रोका। पीछे पता चला कि उसी समय ढाका के आश्रम में चोरों ने घुसकर काली प्रतिमा का हाथ तोड़कर गहने चुरा लिए। कालीजी से उनकी अभिन्नता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण चाहिये?

एक बार ढाका में रहते समय काली पूजा हो रही थी। तब माता जी ने भोलानाथ बाबा (उनके पति) को कहा "तुम पूजा करो।' ऐसा कह कर स्वयं देवी मूर्ति से सटकर बैठ गईं। भोलानाथ पूजा करने लगे। एकाएक माँ के मुख से जीभ निकल आई और माँ के चाँपे के फूल के समान वर्ण काला मालूम पड़ने लगा। माँ ने सभी को आँखें बन्द करने के लिए कहा और माँ के कन्धे से वस्त्र खिसक कर गिर गया। काली पूजा के अनन्तर लोगों ने आँखें खोलीं तो देखा कि माँ अपने स्वाभाविक स्वरूप में गौरवर्ण धारण किए वस्त्र से मस्तक ढके पुष्पमाल्यादि से आवृत बैठी हैं।

एक दिन माँ ढाका में ही गाड़ी से जा रही थीं, उसी समय माँ ने देखा कि एक चलमान कालीजी की मूर्ति आकाश मार्ग से आकर माँ के ऊपर गिरने के लिए उद्यत है। उनके गले में जबा की माला थी और पैरों के नीचे शिवजी नहीं थे। माँ ने अपना यह अनुभव पीछे दीदी को बतलाया। तब से लोग माँ को 'मानुषकाली' यानी मानव शरीर धारिणी काली कहने लगे।

ब्रह्माद्वैत में प्रतिष्ठित माँ, ज्ञानगामी, भक्तिमार्गी, कर्ममार्गी सामान्य बुद्धिवाले, जागतिक सुख पाने की इच्छा वाले सभी पर कृपा करती थी। माँ ने कोई नया सम्प्रदाय, नवीन धर्ममत नहीं चलाया। उनके आश्रम में, कन्यापीठ में, 'भजो माँ आनन्दमयी', 'श्रीचण्डी चण्डी एलो रे', 'जय शिव शंकर' 'अच्युतं केशवं राम नारायणं' सभी प्रकार के कीर्तन होते हैं। जन्माष्टमी रामनवमी, दुर्गापूजा, सरस्वती पूजा, शिवरात्रि, होली सभी उत्सव धूमधाम के साथ तथा धर्मशास्त्र के नियमों के अनुसार सम्पन्न होते हैं।

माँ वयः प्राप्त सभी स्त्री-पुरुष को 'माँ' और 'बाबा' करके पुकारती थीं, पुरुषों को पिता जी भी कहा करती थीं। स्वयं अनन्त ज्ञान की खान होती हुई भी विद्वान् ज्ञानी लोगों से, महन्त महा-मण्डलेश्वरों से बातें करते समय माँ कहती थी "मैं क्या बोलूँ, छोटी बच्ची को पिताजी ने पढ़ाया नहीं।" लेकिन माँ का ज्ञान अथाह था। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के तुल्य माँ के मुख से जब चाहे तब संस्कृत मन्त्र निकल पड़ते थे (वे दीक्षा या संन्यास मन्त्र के सदृश होते थे)। वाराणसी में पहली बार जब संयम सप्ताह हुआ था। एक दिन पौने नौ बजे मौन की घण्टी होने पर सभी लोग मौन हो गये। पन्द्रह मिनट बाद मौन समाप्त होता है उसके ठीक पहले माँ ने देखा कि एक पाँच साल का बालक दक्षिण की तरफ मुख करके बैठा हुआ है। माँ के कान में बालक से उच्चारित 'हे पिता, हे हित, हे ब्रह्मतत्त्वम्,' 'हे पितः, हे हित, हे ब्रह्मभूतम्' 'हे पितः, हे हित, हे ब्रह्मस्वरूपम्' इस प्रकार छन्दोमय गीत सुनाई दिया और माँ इसे कोमल स्वर से, भाव के साथ गाने लगी एवं दूसरे समय भी इसे गाया करती थीं।

सत्संग के समय माँ अद्वैत वेदान्त, द्वैताद्वैत, सांख्य, योग, तन्त्र, धर्मशास्त्र, वेद वेदान्त सभी विषय में कहा करती थीं और इतनी सरलता से इनकी व्याख्यायें करती जाती थीं कि श्रोतृवर्ग बहुत सुन्दर रूप से समझ जाते थे। माँ का ज्ञान ग्रन्थ पर आधृत न होकर अनुभव प्राप्त था। ईश्वर या ब्रह्मतत्त्व का प्रश्न आ जाने से माँ कितने सरल ढंग से समझाकर कहती थीं "बाबा, तुम्हीं तो हो, दो कहा हैं ?" फिर कभी कहती थीं "तुम में ही तो वह है, प्रयोजन है केवल आवरण हटाने का। परमात्मा परब्रह्म पर अज्ञान का आवरण है, उसे हटाना

है।" कभी कहती थीं "उनके शरण में आओ, नाम जपते रहो। अनित्य के प्रति तुम आकृष्ट हो, जो कुछ करते हो अनित्य वस्तु के लिए करते हो। अब उलट जाओ। नित्य वस्तु की तरफ देखो, उन्हीं की खोज में रहो।" 'विद्या बुद्धि ऐश्वर्य ये सब नित्य वस्तु के बिना बेकार है। ऐसी विद्या से, ऐसी बुद्धि से मुक्ति नहीं मिलती। केवल आवागमन--रिटर्न टिकेट।"

कभी-कभी दुष्ट लोग भी माँ के पास आते हैं, यह प्रसङ्ग आने से माँ कहती थीं "वावा, यह दुष्ट है, इसे त्यागना है, यह बुद्धि कहाँ से आयेगी ? सभी तो उन्हीं के रूप हैं।" ईश्वर की सर्वव्यापकता समझाने के लिये माँ का कहना था उनके लिए करवट बदलने के लिए भी स्थान नहीं है। एकबार माँ के मुख से निकल पड़ा 'मेरे लिए करवट वदलने के लिए भी स्थान नहीं है।" आत्म चिन्तन और आत्म दर्शन के लिए प्रयत्न करना यही था माँ का उपदेश। आत्मा की खोज, परमात्मा की खोज, एक ही है और वह अन्दर ही हैं। दर्शन का उपदेश इतनी सरलता से और किसने दिया ? एक बार किसी ने पूछा था "माँ, आनन्दमयी क्या हैं ?" माँ ने कहा "तुम ही आनन्दयय या आनन्दमयी हो।' परम तत्त्व, परम सत्य और आनन्द तो एक ही है।

दर्शनों में योगदर्शन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माँ की जैसी योगिनी कौन थी ? माँ वहुत अच्छे ढंग से कुण्डलिनी-जागरण और साथ-साथ नाभि के नीचे ग्रन्थियों के खुल जाने, सुषुम्ना के जागरण इत्यादि की प्रक्रिया को समझाती थीं। शब्द ब्रह्म के सिलसिले में उन्होंने कहा कि शब्द ब्रह्म का अखण्ड शब्द चल ही रहा है। जो अधिकारी है, वही यह सूक्ष्म शब्द सुन पाता है। योगी इसे सुन सकते हैं। माँ ने पुनः कहा 'ऐसी घटनायें इस शरीर में अनेक बार हुई हैं। बहुत दूर से किसी ने 'माँ' को पुकारा और वह शब्द उन्हें सुनाई दिया।"

हटयोग की त्राटक आदि मुद्रायें और नाना प्रकार के आशन उनके शरीर पर अनायास होते रहे। माँ की अलौकिकता का क्या कहा जाय ? दूर्वा घास नोचने के लिए जिस तरह से तीन उँगलियाँ एकत्र की जाती है उसी प्रकार से उतने ही परिमाण में चावल

प्रतिदिन खाकर माँ महीनों रह गयीं। विना पानी पिये कितने दिन रहीं।

सत्यद्रष्टा ऋषि अरविन्द ने कहा था "माँ सच्चिदानन्द स्तर में विराज रही हैं।" श्रीमत् राम ठाकुर ने कहा था "तुम लोग रमना (ढाका का एक स्थान) जाकर माँ का दर्शन करो। माँ साक्षात् भगवती हैं।"

माँ ईश्वर का अवतार अवश्य हैं लेकिन मार्कण्डेय चण्डी में देवी की जो प्रतिश्रुति पाते हैं "तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् यह अवतार इस प्रतिश्रुति के पालन के लिए नहीं हुआ। यह अवतार करुणाघन मातृरूप से अवतार है। कोई 'अरि' नहीं है। 'अरि' होने पर भी माँ अरि नहीं मानती थीं। अच्छे-बुरे सभी को स्नेह-करुणा, ममता, क्षमा वितरण करके परिशुद्ध करने के लिए माँ का अवतार हुआ था। माँ स्वधाम से उतरकर आयीं थीं पतितों के उद्धार के लिए, दुखियों का दुःख दुख दूर करने के लिए, कलिहत जीव के मन में भगवन्नाम में रुचि उत्पन्न करने के लिए और नारी जातिका एक अभिनव रूप से जागरण तथा उत्थान करने के लिए। पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क में आकर तथाकथित नारी जागरण हमारे यहाँ हो रहा था किन्तु माँ की शिक्षा दूसरी थी। पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करके शालीनता, नम्रता, लज्जा आदि त्यागकर, आध्यात्मिकता से हाथ धोकर जो जागरण हो, वैसा जागरण नहीं। माँ आई थीं नारी को शिष्टता, शालीनता, शील, लज्जा, क्षमा, नैतिक तथा सर्वविषय में संयम, पवित्रता, भक्ति एवं आध्यात्म की राह से प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा कला इत्यादि से सुपरिचित करते हुए जड़ता भीरुता से मुक्त उच्च स्तर की विदुषी बनाने के लिए। माँ के कन्यापीठ में ऐसी ही कन्यायें देखने में आती हैं।

प्रेम, करुणा एवं भक्ति की जो पावन गंगा माँ ने बहायी, वह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेम, करुणा, भक्ति के सदृश ही है। माँ का ध्येय भी पतितोद्धार था लेकिन माँ की सामर्थ्य, महिमा महाप्रभ से बढ़कर है इसलिए कि पुरुष होने के कारण, श्री चैतन्यजी को नियन्त्रण में नहीं रहना पड़ा। पक्षान्तर में माँ को उन दिनों की ग्रामीण गृहवधू-नम्रता की मूर्ति-आदिके रूप में क्या नहीं सहना पड़ा, क्या नहीं सुनना पड़ा ? लेकिन लोकोद्धार के लिए अवतीर्ण माँ अपनी आध्या-

४

त्मिकता और तात्कालीन साधना इत्यादि में अडिग रहकर, गृहवधू के असंख्या गृहकर्म-पतिसेवा पति की रुचि के अनुसार रन्धनादि करके, पतिके आत्मजनों की भी सेवा करके, सभी के साथ–भक्तजन के साथ प्रेम करुणापूर्ण व्यवहार करके, उन दिनों के पर्दा प्रथा का भी यथा-सम्भव परिपालन करके, अन्त में विश्वजगत् के श्रद्धा के पात्र, पूजा-स्पद हृदयका धन बनकर, महिमामयी राजराजेश्वरी स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर स्वधाम चली गईं । 'प्रेम कलशे-कलशे ढाले तबु ना फुराय' माँ यह गाना स्वयं सुमधुर स्वर से गाती थीं और अपने आचरण से दिखा भी दीं कि घड़ा-घड़ा प्रेमवारि तृषित तापित जनों को वितरण करने पर भी उसका अन्त नहीं हुआ ।

ऐसी देवी भी करुणा परवश होकर सामान्य मनुष्य के स्तर में उतरकर कैसे सुन्दर ढंग से साधारण जन जैसी बातें करती थीं । सदा आध्यात्मिक बातें करने से सामान्य जन उस तरफ आकृष्ट नहीं होंगे और सत्संग, जप, कीर्तन इत्यादि कल्याण के मार्ग में नहीं जायेंगे, यह माँ जानती ही थीं । अतः आत्मीय जन जैसे बुलाते हैं किसी अनुष्ठान में, उत्सव में,–उस तरह से कहती थीं । मुझे स्मरण है कि एक बार जब जन्मोत्सव के उपलक्ष में नाना प्रकार का प्रोग्राम चल रहा था तब माँ ने एक महिला को कहा "तुम तो आती हो तुम्हारी लड़की तो नहीं आती है !" महिला ने कहा "उसकी एम०ए० परीक्षा पास है इसलिए नहीं आना चाहती है।" माँ ने कहा '२।१ दिन सत्संग में आने से परीक्षा का कुछ नहीं विगड़ता ।" महिला ने कहा 'क्या करूँ ? सुनती नहीं ।" माँ ने उत्तर दिया "कैसी बात ! तुम्हारा न खाने से उसका पेट नहीं भरता, फिर तुम्हारी बात, नहीं सुनेगी ? उसको फिर से कहना आने के लिए ।" कितना स्नेह । नानी दादी लोग सन्तान की सन्तान को पास पाने के लिए इसी तरह से बुलाया करती हैं । लौकिक दृष्टि से यह है आत्मीय-सा स्नेह, जिससे मनुष्यहृदय द्रवित होता है और आध्यात्मिक दृष्टि से यह है कल्याण की तरफ प्रवृत्त कराने के लिए आग्रह । स्थितप्रज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ माँ केवल ब्रह्मज्ञान ही वितरण नहीं करती थीं,—यद्यपि ध्येय उनका यही था । आधुनिक युवकों से माँ उनकी समस्याओं का समाधान करके वहुत सरल ढंग से बातें करती थीं । साक्षात् सरस्वती रूपिणी माँ का आधुनिक वैज्ञानिक विषयों का भी पता था । प्रकाश और शब्दका परस्पर सम्बन्ध माँ ने वहुत अच्छी तरह से समझाया ।

माँ में कठोरता, विद्रोहका एकान्ततः अभाव था। 'अद्भुत करुणामयी' माँ ने बिना विद्रोह से अनेक असम्भव कार्यों को सम्भव किया। माँ विवाहित होकर भी चिर ब्रह्मचारिणी थीं। पति के साथ एक साथ एकत्र रहकर भी अपना ब्रह्मचर्य अक्षुण्ण रखी थीं। आश्चर्य का विषय यह है कि प्रारम्भ में भोलानाथ में मानवीय वृत्तियाँ थीं और वह उसी प्रकार से माँ को चाहते भी थे। लेकिन माँ का देवभाव, माँ के अलौकिक व्यवहार, दिव्य भाव और मातृभाव के समक्ष भोलानाथ को हार माननी पड़ी। भोलानाथ माँ से रूठकर अलग नहीं हुए, माँ ने भी विद्रोह नहीं किया, किन्तु भोलानाथ में ही देवत्व का उन्मेष किया। मानव भोलानाथ साधक बने, ब्रह्मचारी बने, त्यागी बने, माँ को मातृभाव से देखने लगे और अपनी अन्तिम शय्या में सेवापरायणा माँ को 'माँ' करके पुकार करके तृप्त होकर दिव्यधाम चले गए।

ऐसी ही मेरी करुणामयी माँ थी। एक सज्जन आकर बोले 'माँ आप प्रतिमा-पूजा, नाना देव-देवी, इनका समर्थन क्यों करती हैं? अद्वैतवादिओं के लिए यह अनुचित है।' करुणामयी माँ बोलीं 'ठीक है। अद्वैतवादियों का ब्रह्म ही भक्तों के दृष्टि में राम कृष्ण होकर मनको रमाता है। वैष्णव लोग कहते है 'जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती वहाँ-वहाँ राम, कृष्ण दिखाई पड़ते हैं।' क्या यह वेदान्तिओं का 'सर्वंखलिदं ब्रह्म' नहीं है?' फर्क तो केवल जल और वर्फ का जितना ही है। प्रश्न का समाधान कितनी सुन्दरता से हुआ। उद्धत प्रश्नकर्ता का विद्रोह भी दूर हुआ।

और तो और, मेरे जैसे अक्षम अयोग्य सङ्कोची व्यक्तियों के ऊपर भी माँ की अपार कृपा रही। १९७६ में मेरे अग्रज स्वर्गत श्री सत्यांशुमोहन मुखोपाध्याय के परलोक सिधार जाने के कारण मैं जब बहुत शोकाकुल थी, तब माँ ने कहा था "भक्ति, यह गति एक दिन सभी की है। आज तुम बड़े भाई के वियोग से रो रही हो। लेकिन कौन रहेगा? एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम जिस माँ के सामने रो रही हो वह भी नहीं रहेगी, तुम भी एक दिन नहीं रहोगी। जाना तो एक दिन सभी को है। रोओ नहीं, धैर्य धारण करो।"

इससे भी बहुत वर्ष पहले मेरा मातृवियोग हुआ था। मुझे शोकातुर देखकर माँ ने कहा "माँ-बाप किसी के क्या चिरकाल रहते हैं ? 'माँ-माँ' करके बिलख-बिलखकर सारे बाल पका डाली ? इतने दिन हो गए तब भी तुम धैर्य धारण नहीं कर पा रही हो। होली के अवसर पर चलो मेरे साथ वृन्दावन। वहाँ तुम्हारा मन बहल जायगा।" मैं, माँ की छत्रछाया में, माँ के पास १५ दिन वृन्दावन रहकर आई और उससे शान्ति भी मिली। ऐसी थीं करुणामयी मेरी माँ। इससे बहुत पहले मेरी तरफ से विशेष आग्रह न रहने पर भी कृपा करके मुझे सद्गुरु प्राप्त कराके स्वयं दीक्षा दिलवा दी थी माँ ने ही। माँ नाना प्रकार स्वादु भोजन बनाने में भी अद्वितीय थीं। लेखिका के माँ के स्वर्गवास के अनंतर श्राद्धादि के बाद जब आश्रय में भण्डारा का प्रबन्ध किया गया तब माँ ने मेरी दिवंगत जननी का प्रिय भोजन क्या-क्या था उनका पता लगाकर स्वयं भोजन बनानेवाली रन्धनकला में दक्ष प्रवीणा कन्यापीठ में रहनेवाली महिलाओं को निर्देश दिया था। अन्तिम दोनों अनुच्छेद लिखने का तात्पर्य यह है कि माँ की अहेतुकी कृपा इस भावभक्तिहीन सामान्यजन पर भी हो गयी थीं।

आँखें भर आती हैं। वह 'धृतसहज समाधि, विभ्रती, हेमकान्ति, नयनसरसिजाभ्यां स्नेहराशीन किरन्ती' मूर्ति अब नहीं दीखेगी, वह अमृतमयी वाणी नहीं सुनाई देगी।

लेकिन नहीं,-निराशा से ग्रस्त नहीं होऊंगी। अब माँ, तुमको आँखों की रोशनी से, आँखों के सामने नहीं देखूंगी, देखूंगी हृदय में। ब्रह्ममयि माँ, चिरन्तनि माँ, हृदय का अन्धकार दूर कर वहीं आओ, वहीं चिरकाल रहो।

आज से यह जीवन उत्सर्ग

श्रीमती सुशीला मॉडवेल*

वर्ष १९५४ में हुए माँ के प्रथम दर्शन से अपने इस संस्मरण का श्रीगणेश कर रही हूँ। उस समय विश्व विभूति श्री श्री माँ आनन्दमयी की धवल कीर्ति से अध्यात्म के प्रति किञ्चित रुचि रखने वाले प्राणी तो भली प्रकार परिचित थे ही हमारे जैसे सामान्य लोगों के बीच भी वे विशिष्ट दैवी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित थीं। उक्त अनदेखी माँ के दर्शन की तीव्र लालसा मुझे अलमोड़ा आश्रम में सम्पन्न हो रहे उनके जन्म महोत्सव में खीच ले गयी।

प्रकृति के प्रांगण में स्थित अलमोड़ा आश्रम की श्री सुषमा माँ की उपस्थिति से अत्यधिक आकर्षक हो गयी थी। वहाँ सुदूर भारत के कोने-कोने से माँ के उपासक भक्त गणों के अतिरिक्त मुझ जैसे नवागत जिज्ञासुओं की उपस्थिति भी कुछ कम न थी। सारा परिवेश प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अध्यात्म की रश्मियों से जीवन्त हो रहा था। उपस्थित-जन इस लौकिक धरातल पर पारलौकिक आनन्द के सुखोपभोग में मग्न थे। माँ की ज्ञात उपस्थिति से सुख-शांति के साथ जिस अज्ञात मनःतोषकी उपलब्धि हो रही थी उसका अनुभव हमारे जैसी अज्ञ नारी भी कर रही थी। 'प्रभु जानत सब बिनहिं जनाए' के भाव में निमग्न मैं माँ के प्रति अभिभूत अपनी प्रच्छन्न भक्ति धरोहर के साथ माँ के समक्ष उपस्थित हुई। मुझे देखते ही वर्षों से बिछड़े संतान के प्रति जो करुणामयी दृष्टि और वाणी के मार्दव की कल्पना की जा सकती है उसके प्रकट रूप में माँ ने मुझे पुकारा "इतने दिनों से कहाँ था ?" और अपने असीम वात्सल्य दृष्टि से हमें अभिभूत कर दिया। तब से माँ की वह अहेतुकी कृपा मुझे बराबर मिलती रही। यह सब कैसे और क्यों हुआ, मैं नहीं कह सकती, क्योंकि मैं स्वयं अपने को इसका अधिकारी नहीं मानती हूँ, पर अकारण करुणा वरुणालय के लीला रहस्य को मैं क्या समझ पाती। इसे प्रभु के विशेष अनुग्रह के रूप में स्वीकारते हुए मैं माँ के प्रति समर्पित हो उठी। क्रमशः माँ के कुछ और नजदीक आने पर एक

*177 गांधी नगर, बरेली (उ० प्र०)

दिन माँ ने यों ही पूछा—तुम्हारे कितनी संतान हैं ? मेरे नकारात्मक उत्तर मर्म को समझते हुए माँ ने कहा—"अच्छा आज से मैं ही तुम्हारी लड़की-लड़का दोनों हूँ।" और फिर उसी वाल सुलभ अन्दाज में बोलीं 'मेरे लिए खिलौने लाओ मैं खेलूंगी।' सचमुच ही हम लोग बाजार गए और बहुत सारे खिलौने लाए, जिन्हें माँ ने स्वीकार कियाऔर खूब झुनझुने बजाए। मेरी आँखों के समक्ष माँ की वह स्नेहित छवि बराबर स्मरण हो उठती है। उस समय से माँ के प्रति हमारी वात्सल्य की भावना अनायास बढ़ती ही गयी। मैंने इसे "जो जेहि भाय रहा अभिलाषी। तेहि-तेहि कै तसि तसि रुचि राखी" के मातृ अनुग्रह के रूप में ग्रहण किया। अब जब भी मैं माँ की पूजा करती तव अन्य सामानों के साथ ही उसमें खिलौने आदि भी रख देती। इस प्रकार यह क्रम चलता रहा। लगभग सात-आठ वर्षों के वाद माँ ने स्वप्न में उसी वाल सुलभ अंदाज में कहा "अब हम पढ़ाई करेंगे—हमें कागज पेन्सिल दो।" तब मैंने माँ की पूजा में कागज पेन्सिल का समावेश करना प्रारंभ कर दिया। पुनः एक दिन उन्होंने कहा 'अब तुम दोनों वृन्दावन आश्रम में रहा करो और शिवकुटी क्रय कर लो।' हमने माँ के आदेश का यथावत पालन किया। मेरे पतिदेव स्वर्गीय श्री नागेश्वर प्रसाद मॉडवेल ने उसी वात्सल्य की उपासना में श्री माँ का नाम लाडो रखा था और हम दोनों इसी नाम से श्री माँ को सम्बोधित करते थे। इस भाव को दृढ़ एवं परिपक्व बनाने के लिए श्री माँ ने हमारे साथ वात्सल्य भाव की जो लीला की है उसकी अनेकों स्मृतियाँ अन्तः को उद्वेलित कर रही हैं। माँ का वह लीला विलास, मधुर चितवन और मधुर हास एवं मन को लुभाने वाली मधुर वाणी मुझे एक ऐसे मनोराज्य में पहुँचा देती है जो वर्णनातीत है और शायद वाणी का विषय भी नहीं है।

एक वार की घटना का मैं जिक्र करना चाहूँगी। मैंने स्वप्न में देखा कि एक साधु पुरुष मुझसे कह रहे हैं कि तुम्हारी 'शिवकुटी' में भगवान पधारेंगे। तभी मेरी आँख खुल गयी और मैंने इसे ईश्वरीय आदेश मानकर अपनी कुटिया को भली प्रकार सुधारना-संवारना प्रारम्भ कर दिया। मन में सोचती रही थी यहाँ माँ को बुलाऊंगी। उस समय स्वामी परमानन्दजी महाराज वृन्दावन में थे। उनसे मैंने अपनी अन्तः भावना एवं भावी योजना का प्रकाश किया जिसे पूरा

कराने में उन्होंने पूर्ण योगदान किया। लान पक्का कराना, कमरे से संलग्न रसोईघर बनवाना आदि मेरी इच्छाएँ थीं जो स्वामीजी की कृपा से पूर्ण हुईं। रंगाई-सफाई के साथ और भी तमाम बिजली सम्बन्धी कार्य पूर्ण हुए तब जाकर मैंने माँ को अपना स्वप्न सुनाया और निवेदन किया कि उसे सत्य सिद्ध करें। माँ ने सहज भाव में उत्तर दिया 'हम भगवान तो जानते नहीं हैं पर जब चाहो इस शरीर को शिवकुटी में ले जाना।' और वह दिन भी शीघ्र उपस्थित हुआ जब माँ मोदीनगर जाते समय मेरी शिवकुटी आयीं। माँ ने कुटिया की खूब प्रशंसा की। बोलीं "बहुत सुन्दर बनायी है" और मेरा हाथ पकड़कर सुन्दर जानकर रसोईघर देखकर पुनः बोली 'बहुत सुन्दर' और कमरे में जाकर भव्य रूप से सज्जित सिंहासन पर विराजमान हुईं और बोलीं 'अति सुन्दर'। उस दिन की सारी सजावट आदि की व्यवस्था में सक्रिय भूमिका निभाने की उदार कृपा श्रीमती सरोज पालीवाल ने। वे मेरी शुभैषी हैं मैं उनके प्रति चिरऋणी हूँ। इस प्रकार प्रभु के पदार्पण का मेरा स्वप्न साकार हुआ। माँ ने अपनी उपस्थिति से उस निर्जीव कुटीर को चेतना सम्पन्न बना दिया। मैं पारस पाकर आत्म विभोर थी। माँ की मानस पूजा तो अनायास चल रही थी, मेरा रोम-रोम माँ मय हो रहा था और मैं 'रघुपति पति मोरे' के 'अभिमान' में सब कुछ भूल चुकी थी। पर जब व्यावहारिक ज्ञान का भाव जगा तो मैंने घर आयी बिटिया की भाँति माँ को लहंगा, दुपट्टा पहनाकर समयोचित आभूषणों से सज्जित कर विविध प्रकार से पूजन भी सम्पन्न किया। आरती के समय मेरे अन्तः से वाणी का जो प्रवाह माँ की अभ्यर्थना में स्वतः प्रवाहित हुआ उसे यहाँ देना प्रासंगिक होगा।

अब सौंप दिया इस जीवन का
सब भार तुम्हारे हाथों में।

मेरी जीत तुम्हारे हाथों में
मेरी हार तुम्हारे हाथों में। अब...।

मैं जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ
जैसे जल में कमल का पुष्प रहे।

मेरे गुण-दोष समर्पित हों
श्री माँ तुम्हारे चरणों में। अब...।

मेरी इस जीवन नैया की
हे माँ तुम्ही तो खिवैया हो
अब क्या डर है तूफानों का
पतवार तुम्हारे हाथों में। अब...।
हममें तुममें बस भेद यही
हम सेवक, तुम स्वामिनि हो
हम हैं संसार के हाथों में
संसार तुम्हारे हाथों में। अब...।

माँ मुझ अकिञ्चन अबोध भक्त की इस सेवा-पूजा से कितनी प्रसन्न थीं, यह उनके उच्छल स्नेह से स्वतः प्रकट हो रहा था। मैं गद्गद भाव से इस अप्रत्याशित कृपा को समेटनें में अपने को समर्थ पा रही थी। माँ जब विदा होने लगीं तो चलते समय अपने बगल से निकालकर एक साड़ी मुझे दिया और कहा कि 'इसे पूजा में पहनना।' सचमुच मुझे ऐसी ही अनुभूति हो रही थी कि मैं अपनी बेटी को विदा कर रही हूँ। उसी हर्ष-विषादमय वातावरण में माँ चली गयीं। उनके जाने के बाद एक बंगाली महिला ने मुझे बातचीत के क्रम में बतलाया कि बंगाल में यह परम्परा है कि जब लड़की माँ के यहाँ आती है तब उपहार के रूप में माँ को एक साड़ी भेंट करती है। वैसा ही माँ ने भी किया था। भविष्य में भी माँ का यही भाव मेरे प्रति बराबर बना रहा और तदनुरूप व्यवहार जनित स्नेह प्राप्त होता रहा। यह सब अनुभव की वस्तु है जिसे मैंने देखा और भोगा है, इसका वर्णन वाणीका विषय नहीं है। मैं ऐसी अलौकिक अपनी लाडो माँ के श्री चरणों में अशेष श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रही हूं। मेरा उनका सम्बन्ध शाश्वत और अविच्छिन्न है। मुझे आज भी उनकी बालसुलभ वाणी सुनायी पड़ती है 'इतने दिन से कहाँ था ? हमारे लिए खिलौने लाओ, हम खेलेंगे, अब पढ़ाई करेंगे–कागज-पेंसिल.लाओ।' और मेरे जीवन की रिक्तता इस अक्षय पात्र की प्राप्ति से पूर्णता में परिवर्तित हो गयी है। जीवन में कुछ भी शेष नहीं रह गया है।

जय माँ जय जगत

●

माँ का जीवन्त स्मारक

श्री श्री आनन्दमयी भागवत भवन (बंगलोर)

मई, १९७९ में ऐसा शुभ अवसर आया जिसमें बंगलौर में कर्नाटक और दक्षिण भारत के अन्य भागों के संभ्रान्त नागरिक श्री श्री आनन्दमयी माँ की ८४वीं जयन्ती सम्पन्न करने के लिए एकत्र हुए। परम् सौभाग्य से माँ स्वयं उक्त अवसर पर बंगलोर पधारीं। उस समय का सारा वातावरण आनन्द एवं उल्लास से परिपूर्ण हो उठा था। इस समारोह को सफल बनाने के लिये कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण के संरक्षण में श्री एन० लक्ष्मण राव को अध्यक्ष तथा ट्रेवेन्नकोर के ऐलिया राजा, स्वामी विश्वानन्द आदि की सदस्यता में एक न्यास स्थापित किया गया। इस न्यास का नामकरण 'श्री श्री माँ आनन्दमयी न्यास, बंगलोर' किया गया।

स्मरणोत्सव के उपलक्ष में स्थानीय न्यास ने माँ के आशीर्वाद से बंगलोर में एक 'भागवत भवन' के निर्माण का निश्चय किया। यहाँ पर देश भर के भागवत मर्मज्ञ अपना प्रवचन करेंगे और इसके अतिरिक्त योग्य शिष्यों को प्रशिक्षित भी करेंगे जो भारत के विभिन्न भागों में भागवत के संदेशों का प्रसार करेंगे। आज एक भव्य और आकर्षक इमारत 'श्री श्री आनन्दमयी भागवत भवन' के रूप में बंग-लोर के एक विकसित हिस्से में अपने निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु खड़ी है। इसके निर्माण में कर्नाटक राज्य सरकार और आन्ध्र सरकार तथा अन्य स्थानीय लोकोपकारी संस्थाओं ने मुक्त हस्त से दान दिया है।

इस विशाल भवन में एक विस्तृत सत्संग कक्ष है, जिसमें संगरमरमर की फर्श और एक बड़ा मंच है। इसमें ६०० व्यक्ति सुगमता से आसीन हो सकते हैं। इस कक्ष के चारों तरफ एक सुरुचिपूर्ण गलियारा है। मंचपर पवित्र भागवत स्थापित है। कक्ष में विभिन्न अवतारी पुरुषों जैसे श्री माँ, आदि शंकराचार्य आदि वेद व्यास आदि के चित्र लगे हैं। कक्ष की ओर अग्रसरित सीढ़ी

हृदयग्राही पत्थरों से जड़ी हुयी है। गोपुरम् की उपस्थिति भवन की पवित्रता में वृद्धि करती है। मुख्य कक्ष के पार्श्व में आगत महात्माओं के निवास हेतु कक्ष बने हुये हैं। इसके अतिरिक्त उनके सेवकों के लिये अलग कमरे बने हैं। कार्यालय के लिए अलग कमरा है। सेवकों के आवास हेतु प्रवन्ध है। कार्यालय कक्ष में एक पुस्तकालय है, जिसमें धार्मिक, आध्यात्मिक और विशेषकर माँ से सम्बन्धित पुस्तकों का संग्रह रक्खा गया है। प्रार्थना कक्ष के नींचे भूमितल पर भोजनालय तथा भण्डार का कमरा और भ्रमणकारी महात्माओं के रहने की व्यवस्था है। महिलाओं और पुरुषों के लिये समुचित प्रसाधन कक्षों की भी व्यवस्था की गयी है। इसके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर उपयोग के लिए भोजन कक्ष भी है। सम्पूर्ण भवन में आधुनिक ढंग की विद्युत व्यवस्था है। भवन के चारों तरफ एक सुन्दर बगीचा और घास का मैदान आरोपित किया गया है। आगत भक्तों का प्रवेश करते ही आह्लादकारी अनुभूति होती है। वाहनों को रखने की भी समुचित व्यवस्था की गयी है। सम्पूर्ण भवन का निर्माण इस प्रकार किया गया है कि प्राकृतिक वायु एवं प्रकाश अन्दर आता रहे।

भवन का उद्देश्य—

श्रीमद्भागवत के प्रचार के मुख्य उद्देश्य के अतिरिक्त, इस न्यास ने अपने लिये कई और कार्य निधारित किये हैं, जैसे गरीबों को राहत प्रदान करना, शिक्षा, यात्रियों को मुफ्त आवास और सहायता प्रदान करना, निःशुल्क भोजन वितरण, प्राचीन भारतीय संस्कृति के उत्थान हेतु धर्मशास्त्र एवं संस्कृति पर विभिन्न विद्वानों का प्रवचन करवाना।

संविधान—

श्रृंगेरी शारदापीठ के जगतगुरु शंकराचार्य न्यास के मुख्य धार्मिक संरक्षक होंगे और सभी धार्मिक एवं अध्यात्मिक विषयों पर उनका निर्णय अन्तिम माना जायेगा। इसके अतिरिक्त कर्नाटक के भूतपूर्व राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण न्यास के मुख्य संरक्षक होंगे जिनकी सभी प्रस्तावों पर स्वीकृति आवश्यक होगी। न्यास में प्रमुख नागरिक, व्यापारी, शिक्षाशास्त्री भी

सम्मिलित किये गये हैं। श्री श्री आनन्दमयी संघ के अध्यक्ष श्री वी० के० शाह न्यासी के रूप में नियुक्त किये गये हैं।

भागवत भवन को सुचारु रूप से संचालिल करने हेतु श्री श्री माँ आनन्दमयी न्यास और रगीगुडा अंजनी स्वामी भक्त मंडली न्यास के बीच एक समझौता हुआ है, जिसके द्वारा पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों में सहयोग किया जायेगा। दोनों न्यासों में निकट का सम्पर्क रहेगा।

कोष—

न्यास की गतिविधियों के संचालन हेतु निर्धारित पूँजी निवेश दान और सहयोग राशि का उपयोग किया जायेगा। न्यास निधि के लिये दिया गया दान आयकर से मुक्त रहेगा।

उद्‌घाटन--

द्वारका शारदापीठ के जगतगुरु श्री स्वरूपानन्दजी ने २४ सितम्बर, १९८२ को श्री श्री माँ आनन्दमयी भागवत भवन का उद्‌घाटन किया। उक्त अवसर पर कर्नाटक के तत्कालीन राज्यपाल श्री गोविन्द नारायण तथा मुख्य मंत्री श्री आर० गुण्डूराव भी उपस्थिति थे। माँ के सभी भक्तों की आकांक्षा थी कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्यक्रम में माँ सशरीर उपस्थिति हों, किन्तु उसके कुछ पूर्व ही माँ ने महासमाधि ग्रहण कर ली थी। इस अवसर पर सभी उपस्थित विशिष्ट जनों ने उनको भावभीनी श्रद्धाजल अर्पित की।

भागवत भवन के उद्‌घाटन के पश्चात अबतक निम्नलिखित महात्मा और गुरु जैसे माउण्ट आबू के स्वामी तीश्वरानन्द श्री महाराज, शृंगेरी के जगतगुरु शंकराचार्य, जो कि भवन के मुख्य अध्यात्मिक संरक्षक भी हैं, ने अपने प्रवचन में कहा कि गोपुरम के नीचे मंच पर श्री लक्ष्मीनारायण की मूर्ति स्थापित होनी चाहिए। न्यास ने जगतगुरु के आदेश को यथोचित रूप देने के लिए कार्य आरम्भ कर दिया। धर्मगुरु शंकराचार्य ने भागवत भवन में अभिषेक करने हेतु एक शिवलिंग भी भेजनेका प्रस्ताव किया है। भवन में प्रतिदिन प्रातः काल सायं काल पूजा का आयोजन होता है। इसके अतिरिक्त रामनवमी, शिवरात्रि और श्रीकृष्ण जयन्ती पर विशिष्ट पूजा सम्पादित की जाती है। इसमें शहर तथा बाहर आये भक्त भाग लेते हैं। प्रत्येक पूर्णिमा के अवसर पर श्री सत्य

नारायन भगवान की कथा होती है, जिसमें १५ दम्पती स्वेच्छा से प्रसाद अर्पण करते हैं।

न्यास ने भवन के द्वारा संचालित एवं संपादित करने का एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया है। इसमें श्री माँ का जन्मोत्सव और उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष भागवत सप्ताहों का आयोजन सम्मिलित है। इन कार्यक्रमों का निर्धारण माँ के सद्‌गुरु दक्षिण में स्थित भक्तों को ध्यान में रखकर किया गया है। इस प्रकार उद्यानों के नगर में स्थित 'श्री श्री माँ आनन्दमयी भागवत भवन' माँ की स्मृति में महान उद्देश्यों को पूर्ण कर रहा है।

●

जो नाम, जो रूप अच्छा लगे सर्वदा करते जाओ। मन को केवल भगवान् की ओर रखने की चेष्टा, तभी शान्ति की आशा।

—श्री माँ

माँ का विराट व्यक्तित्व

श्री कैलाशनाथ तिवारी*

आज एक ओर हम पाश्चात्य सभ्यता के चकाचौंध भरे कौतूहल-पूर्ण आकर्षण में रमते जा रहे हैं तो दूसरी ओर अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। यद्यपि इस सभ्यता ने ज्ञान का दरवाजा खोलकर विज्ञान के विराट स्वरूप को देखने की उत्सुकता अवश्य बढ़ायी है, पर जो कुछ हमें न्यास के रूप में मिला था उसको भी हम भूलते गए जिसका लाभ दूसरों को मिला। संतों की वाणी, दार्शनिकों का दर्शन, योगियों की योग विद्या, पुराणों का आस्थावाद आदि का विस्मरण खेदजनक है। इन सबके बावजूद इस संक्रान्ति काल से लेकर आज-तक सिद्धों और संतों की एक अविच्छिन्न परम्परा हमारी विरासत रही है जिसने हमें अपनी परम्परा और संस्कृति से जोड़ते हुए जीवित रखा है। माँ आनन्दमयी इसी संत परम्परा की एक सिद्ध योगिनी थीं।

माँ आनन्दमयी का जन्म ३० अप्रैल सन् १८९६ को पूर्वी बंगाल के खेउड़ा ग्राम में और महाप्रयाण २७ अगस्त सन् १९८२ को देहरादून स्थित आश्रम में हुआ। माँ के आरम्भिक जीवन का वह दृश्य परिवार वालों को बड़ा ही कौतूहलपूर्ण लगता था जब वे रसोईघर में ही भोजन बनाते समय समाधिस्थ हो जाया करती थीं। कुछेक लोगों ने तो इसे हिस्टीरिया कहने में भी संकोच नहीं किया। पर अन्ततः आध्यात्मिक जगत का यह स्फुलिंग एक दिव्य ज्योति के रूप में उभरकर समाज का मार्ग प्रदर्शक बना।

आज के अर्थ प्रधान युग में, अध्यात्म,धर्म परायणता, सेवा सुश्रूषा जैसी उदात्त चीजों की ओर ध्यान देने के लिए हमारे पास समय नहीं रह गया है। लोग क्यों संतों की वाणी पर ध्यान दें? क्या आवश्यकता है कि लोग संस्कृति-सभ्यता, दर्शन और न्याय को समझने का कष्ट करें। वस्तुतः आज जिसको हम नकारना चाहते हैं,

---

* शोधछात्र हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

वह नकारने की चीज नहीं है। वह तो ऐसी अमूल्य धरोहर है जिसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। माँ के आविर्भाव को इस संक्रान्ति काल की एक दैवी कृपा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उन्होंने मानवता को सिखलाया कि ब्रह्म तक पहुंचने के लिए आत्म विसर्जन आवश्यक है। माँ को यह विदित था कि इस परिवर्तनशील जगत में कर्मपरायणता, परदुःखकातरता एवं सद्कर्म ही वे तत्त्व हैं जो मानव को ईश्वर तक पहुंचा सकते हैं। जब हम इन मानवीय गुणों पर ध्यान देंगे तो भी हमें माँ के आविर्भाव का रहस्य समझ में आएगा। माँ के पास जो भी भक्त गया खाली हाथ नहीं लौटा। माँ ने बतलाया कि जीवन का चरम सुख ईश्वर की प्राप्ति और आत्मसमर्पण में ही निहित है। उन्होंने एक सिद्ध-संत और योगिनी के रूप में ख्याति अर्जित करके भी समाज से अपने को अलग नहीं होने दिया। वे पहले समाज-सेवी बाद में कुछ और हैं। अब तक की नारी परम्परा में मीरा के पश्चात लोकमंगल की उदात्त भावना से प्रेरित होकर समाज के लिए जो कार्य माँ ने किया है वह स्तुत्य एवं वन्दनीय है। स्थान-स्थान पर पाठशाला खोलना, समाज सुधार के लिए आश्रम की स्थापना करना, देश-विदेश में अपने आदर्श चरित्र के उपहार द्वारा भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना यह सब माँ की अद्वितीय उपलब्धियाँ हैं। माँ के आश्रम में जो कोई भी आया उसका हृदय माँ के दर्शन मात्र से गद्‌गद होकर आह्लादित हो उठा। वह उनके सरल सौम्य एवं मधुर व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना नहीं रह सका। वे सबको संतुष्ट करती थीं। वस्तुतः वे स्वयं पूर्ण ब्रह्म नारायण थीं। माँ के उस उदात्त रूप को कम लोगों ने देखने का प्रयास किया है। जब माँ भक्तजनों द्वारा प्रदत्त सोने के जेवर निर्विकार भाव से लुटा देती थीं। हजारों रुपये की साड़ियाँ एवं जेवरात, भिखारिनों में बाँटनेवाली माँ की अलौकिक लीला बहुत ही रोचक और स्पृहणीय रही है।

माँ में लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों के दर्शन किए जा सकते हैं। एक ओर वे भिखारियों एवं निर्बलों की ओर जी खोलकर सहायतार्थ दौड़ती हैं तो दूसरी ओर दुर्गा की प्रतिमा के समक्ष खड़ी हो आँसू गिराती हैं और कभी भावविह्वल हो धरती पर लोटने लगती हैं। उन्हें समाज और संस्कृति में गहरी आस्था थी। उन्होंने

इस देश को बहुत कुछ दिया पर स्वयं को एक अबोध बच्ची ही कहती रहीं। महात्मा गाँधी, गोविन्द वल्लभ पंत, जवाहरलाल नेहरू जैसे लोग माँ से प्रभावित थे। वे युग पुरुष थीं, संत और समाज सुधारक थीं। उनका तिरोधान मानवता के इतिहास की अपूरणीय क्षति है जिसकी पूर्ति सम्भव है।

सत्वन्ना की धारा जहाँ है, वहीं कर्मक्षय की पन्था रहती है, न? गन्तव्य स्थान जब तक अप्राप्त तब तक कर्म, अकर्म, विकर्म के आश्रय टे कर्मानुयायी फल भोग करना पड़ता है।

—श्री माँ

गीता जयन्ती महोत्सव

मीनाक्षी सहाय (शिवानी)

(हिन्दी रूपान्तर–आलोक कुमार मिश्र)

"मधुर स्मृतियाँ याद आपकी,
दिवस रात्रि हैं लाती।
हृदय वेदना अश्रु कणों में,
परिणित होकर आती।।

माँ के साथ बीते हुए प्रत्येक क्षण का अपना विशेष महत्व है। मेरे लिये जनवरी १९८१ का वह दिन अविस्मरणीय है। उसकी स्मृति मेरे मस्तिष्क में सदा के लिए अक्षुण्ण बन गई है। नैमिषारण्य स्थित पुराण मंदिर के सोपानों पर मैं अपनी भतीजी गोपी के साथ वार्त्तारत थी।। हम लोग माँ के आश्रम में सम्पन्न 'उत्सव' के बारे में चर्चा कर रहे थे। साथ ही साथ विचार कर रहे थे कि क्या ही अच्छा होता कि एक संयुक्त पूजा का आयोजन किया जाता, जिसके लिये सीमित व्यय अपरिहार्य होता। निकट खड़े दासू दा सम्भवतः हमारी चर्चा को प्रच्छन्न रूप से सुन रहे थे, आये और बोले आप क्यों नहीं गीता जयन्ती का आयोजन करतीं? वास्तविकता यही थी कि उपर्युक्त पूजा का नाम पहले सुनने का सौभाग्य नहीं मिला था, किन्तु दासू दा के वर्णन से हम लोगों की उत्सुकता और बढ़ गयी।

लखनऊ वापस लौटने के पश्चात् इस संबंध में मैंने माँ से पत्र-व्यवहार किया। माँ ने उत्तर दिया कि विचार उत्तम है किन्तु अभी पर्याप्त अन्तराल है, इसलिये बाद में इसपर विचार किया जायेगा। एक माह के पश्चात् मैंने पुनः माँ को पत्र लिखा। फिर उसी प्रकार का उत्तर मिला। इसके पश्चात् हमें भीमपुरा (गुजरात) जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जहाँ पर सरस्वती पूजा का आयोजन था। मेरे साथ मेरी भगिनी और भागिनेयी भी थी। पूजा के समापन के पश्चात् माँ से आशीर्वाद लिया एवं अपने अनुरोध को दुहराया। माँ मुस्कराकर बोलीं 'निर्वाण से बोलो'। तत्पश्चात् मैं निर्वाण दा के

पास गयी। उस दिन वे काफी व्यस्त थे। उन्होंने कहा कि वे बाद में विस्तृत जानकारी भेज देंगे। मई के महीने में निर्वाण दा का पत्र प्राप्त हुआ। उनका कहना था कि चूँकि वे कुछ एक माह के लिये उत्तरकाशी प्रस्थान कर रहे थे अतः मैं माँ से देहरादून में मिलकर विचार विमर्श कर लूँ।

किन्तु दैवी इच्छा कुछ और ही थी। मेरे लिखने पर माँ का उत्तर आया कि उस वर्ष गीता जयन्ती का आयोजन स्वामी अखण्डानन्द के इच्छानुसार पटना में होगा। अतः मेरी इच्छा की पूर्ति इस वर्ष सम्भव नहीं है। हरि इच्छा! मन मसोसकर मैंने इसे स्वीकार किया। हो ही क्या सकता था?

फिर वर्ष १९८२ का आगमन हुआ। मेरे पिता अस्वस्थ होकर मेरी भगिनी के पास दिल्ली में थे, माता भी उनके साथ थीं। फरवरी में मुझे दो पत्र प्राप्त हुये–एक भास्कर दा का और दूसरा निर्वाण दा का। दोनों ही पत्र नैमिषारण्य से आये थे। उस समय माँ वहाँ 'अज्ञातवास' में थीं। मैं अनुमति लेकर उनके दर्शन को गयी। माँ मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। वह थकी दीख रही थीं। मैंने इस समय 'गीता जयन्ती' जैसे विषय पर बात करना उचित नहीं समझा और हम समयानुसार विभिन्न मंदिरों के भ्रमणार्थ चले गए और वापस दोपहर में लौटकर आए।

उसी सन्ध्या हमें वापस लौटना था। चलने के पूर्व मैं माँ से आशीर्वाद लेने गयी। वहाँ प्रातःकालीन अवसाद का नामोनिशान नहीं था। माँ के मुख पर स्फूर्ति एवं ताजगी उद्भासित हो रही थी। वे शान्तचित्त आसनासीन थीं। सर्वप्रथम उन्होंने पिताजी के स्वास्थ्य के बारे में जिज्ञासा की तदुपरान्त स्वतः बोल पड़ीं की उन्होंने विचार किया है कि वे सरस्वती पूजा हेतु काशी जायेंगी। मेरी प्रसन्नता का पारावार न था। माँ ने मुझे और मेरी इच्छा को स्मरण रक्खा। ईश्वरस्वरूपा माँ इतना स्मरण रक्खें, इससे बढ़कर आनन्ददायक बात और क्या हो सकती है?

मैंने कुछ साहस कर माँ से पूछा क्या उपर्युक्त आयोजन वर्ष १९८२ में सम्भव है? माँ ने निर्वाण दा की ओर देखा और बोलीं उनसे ब्योरेवार बात कर लो। निर्वाण दा बोले कि वह मुझे सूचित कर देंगे। मैंने नई आशा के साथ नैमिषारण्य से प्रस्थान किया।

दुर्भाग्यवश इस बीच माँ अस्वस्थ हो गयीं। माँ के सभी भक्तों ने उनके स्वास्थलाभ हेतु प्रार्थना की। जगत् जननी माँ जगदम्बा की कृपा से भक्तों का मनोरथ पूर्ण हुआ।

मई के माह में माता और पिता के साथ मैं माँ के 'जन्मोत्सव' में सम्मिलित होने कनखल पहुँची। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि माँ अपनी कुटिया में प्रवेश कर गयी हैं। उनके दर्शन का समय भी सीमित हो गया है। उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं चल रहा था। केवल सायंकाल बरामदे में निकलने पर ही भक्त जन उनका दर्शन कर पाते थे। यह सुनकर कुछ निराशा हुई। फिर भी दिन में एक बार दर्शन सम्भव था, उनकी उपस्थिति ही महत्वपूर्ण थी। प्रतिदिन सायंकाल हम लोग कुटिया के हाते में रहते, कीर्तन औरआरती चलती रहती। इसके पश्चात् सब लोग हाते से चले जाते।

इस प्रकार नित्यक्रम मुख्य आयोजन के दिन तक चलता रहा। आयोजन के प्रातःकाल से भक्तों ने कार्यालय से चिट ले ली और अपने अर्पण के साथ पंक्तिवद्ध खड़े हो गये। हम लोगों ने भी चिटें लीं और प्रतीक्षारत भक्तों में शामिल हो गये। कुटिया का द्वार खुला, एक एक कर लोग अन्दर गये। मेरी बारी आने पर, मैं अपने को रोक न सकी और पुकार उठी। माँ मैं शिवानी हूँ। माँ घूमीं और मुस्कराकर मुझे भरपूर नजरों से देखा। उस स्नेहिल दृष्टि का वर्णन शब्दातीत है। मैंने झुककर वन्दन किया। माँ ने एक दुपट्टा मेरे मस्तक पर डाल दिया। पंक्ति के दवाव में इससे अधिक रुकना सम्भव नहीं था।

जन्मोत्सव के पश्चात् हम लोगों को लखनऊ के लिए प्रस्थान करना था। इसके पूर्व माँ के साथ कुछ क्षणों का व्यक्तिगत साक्षात्कार हुआ। मैंने उनके समीप पहुँचकर कहा, "माँ शरीर को अच्छा रखिये।" वह केवल मुस्करायीं। मुझे इसका लेशमात्र भी भान नहीं हुआ कि यह अन्तिम दर्शन है, उस दिव्य शरीर का जो मेरे लिए सर्वस्व था। एक बार पुनः गीता जयन्ती के वारे में जिज्ञासा की तो उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा "निर्वाण के साथ तय कर लो।" प्रणाम करके भरे मन से विदा ली, उन्होंने अपने कोमल करों को मेरे मस्तक पर रख दिया।

होनी होकर रही और अगस्त माह में माँ ने महासमाधि ग्रहण

की। हम सब अनाथ हो गये। मेरी तो दुनिया लुट गयी। कुछ भी न बचा, कुछ भी न रहा। अपनी स्वाभाविक मन:स्थिति को प्राप्त करने में मुझे लगभग एक माह लग गया। सर्वप्रथम मस्तिष्क में यही कौंधा कि माँ को दिया वचन पूर्ण होना चाहिये।

निर्वाण दा को देहरादून पत्र लिखा। उन्होंने महती कृपा से आयोजन के सभी विवरण लिख भेजे। उनके अनुसार जयन्ती का आयोजन मार्गशीर्ष की अष्टमी से एकादशी तक होना था। यह एक मात्र अवधि है जब गीता जयन्ती का आयोजन होता है। तब कनखल में स्वामी परमानन्दजी से अनुरोध किया कि सारी व्यवस्था कर दी जाय। अपनी वृद्धावस्था के बावजूद उन्होंने कुछ न उठा रक्खा।

हम लोग दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में कनखल पहुँचे। अन्तिम रूप में कार्यक्रम की व्यवस्था कर दी गयी थी। हम लोगों की भूमि-तल पर रहने की व्यवस्था थी क्योंकि पिताजी सीढ़ी चढ़ने में असमर्थ थे। उसी समय आश्रम में भागवत सप्ताह का भी आयोजन था, इसलिये मुख्य सभाभवन खाली न था। उचित स्थान की समस्या उत्पन्न हुयी। अन्त में निश्चय किया गया कि जयन्ती का आयोजन ब्राह्मलीन माँ की कुटिया में ही होगा। इससे उत्तम क्या हो सकता था ? आयोजन का निश्चय और आयोजन दोनों ही इस पवित्र कुटी में हो रहा था।

सभी कुछ हो रहा था, लेकिन उस दिव्य आत्मा का अभाव सभी को खल रहा था। पूजा की व्यवस्था करने में पूरा एक दिवस गुजर गया। मेरे निकटतम सम्बन्धी विभिन्न स्थानों से पहुँचे। सारी रात हम लोग पूजा स्थल को सजाते रहे। सभी लोग एक परिवार के रूप में कार्य कर रहे थे। तभी माँ का आशीर्वाद अदृश्य रूप में प्रकट हुआ। निर्वाण दा ने भास्कर दा को एक पत्र भेजा था कि तेज ज्वर होने के कारण उनका आना सम्भव नहीं लगता। पूजा सम्पन्न कराने के लिये दूसरे व्यक्ति की व्यवस्था होनी चाहिये। किन्तु माँ की असीम कृपा से जब निर्वाण दा ने अपने को कुछ स्वस्थ अनुभव किया तो वे देहरादून से कनखल के लिए रवाना हो गये।
क्या यह माँ का चमत्कार नहीं था ?

पूजन के दिन मैं और मेरी भागिनेयी गोपी ने निश्चय किया कि उस दिन पूजा समाप्ति तक कुछ भी ग्रहण नहीं करना है। हम लोग

तैयार होकर माँ की समाधि पर जयन्ती से पूर्व प्रणाम करने के लिये पहुंचे। आरती समाप्त होने पर हम लोग घेरे के अन्दर पहुँचे और प्रणाम किया। इसके पश्चात माँ की कुटिया में पहुंचे। वहाँ सभा-भवन के बीचोबीच माँ का एक भव्य चित्र रक्खा था। इसके अतिरिक्त भगवान कृष्ण एवं अजेय अर्जुन का भी चित्र सजा हुआ था। भगवत् गीता की एक प्रति चौकी पर रक्खी हुई थी। माँ की शयनिका एक तरफ रक्खी हुयी थी। निर्वाण दा विराजमान थे और पूजा कर रहे थे। ऐसा भान हो रहा था मानो माँ शयन कर रही हैं और साथ ही साथ सारे कार्यक्रम को निर्देशित भी कर रही हैं।

दूसरे दिन प्रातः गीता का समवेत पाठ हुआ। सभी आश्रमवासी उपस्थित थे। इसके पश्चात निर्वाण दा ने पार्थसारथी पूजन किया और अपनी विशिष्ट शैली में आरती की। सायंकाल स्वामी सच्चिदानंद सरस्वती जी महाराज ने 'कर्म योग' पर सारगर्भित प्रवचन किया। दूसरे दिन समान रूप से कार्यक्रम हुआ। गीता पाठ चलता रहा और विभिन्न विद्वानों के योग के विभिन्न पक्षों पर भाषण होते रहे। समय का बहाव कितना तीव्र है? जयन्ती का अन्तिम दिन आ गया। गीता का सम्पूर्ण पाठ हीरू दा और बिलोजी के द्वारा हुआ। तत्पश्चात एक विशेष पूजा हुई। उस पूजा में प्रयुक्त प्रत्येक वस्तु की संख्या अट्ठारह थी। मैं कामना कर रही थी कि समय निश्चल हो जाय। वह ईश्वरीय वातावरण सर्वदा विद्यमान रहे।

सायंकाल गीता के ऊपर बालकों की एक प्रतियोगिता आयोजित की गयी। सूर्य के अस्ताचलगामी होने के साथ ही गीता जयन्ती महोत्सव भी समाप्त हुआ। वह ईश्वरीय प्रेरणा और प्रभा से युक्त आयोजन मेरे जीवन का अविस्मरणीय यादगार बन गया।'

ज्ञानयोग

(अजात और विवर्त—श्रुति स्मृति में)

श्री रमेश चन्द्र*

प्राक्कथन

अद्वैत वेदान्त का मूल सिद्धान्त अजात है, और विवर्त भी। वास्तव में, अजात और विवर्त दोनों एक हैं और भिन्नता आभास मात्र है।

पहले विचार करें कि विवर्त क्या है ? मन्द अन्धकार में रस्सी पड़ी है—एक डरा कि सर्प है, दूसरे ने कहा कि नहीं किसी ने पानी गिराया है, तीसरे ने उसे एक पतली लकड़ी का टुकड़ा समझा, चौथा समझा कि वह भू छिद्र है। जितने मुँह उतनी बातें। इन सब का आधार है रस्सी ; यह हुआ विवर्त और इसका कारण है रस्सी का अज्ञान।

अब देखें अजात क्या है। प्रकाश किया गया मालूम हुआ कि वहाँ केवल रस्सी है। सर्प, पानी की धारा, डण्डा या भू-छिद्र न कभी था न है। इनमें से कोई चीज कभी पैदा ही नहीं हुई। रस्सी की रस्सी ही थी और है। यह हुआ अजात।

दोनों में भेद केवल वर्णन शैली का है, न कि सिद्धान्त का। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं। एक चलता है समझ के फेर से, दूसरा, यानी अजात चलता है तत्त्व से। निर्णय दोनों का एक ही है दूसरा है ही नहीं। विवर्त तरह-तरह की दृष्टियों का पहले वर्णन करता है। कहता है—यह तुम्हें प्रतीतियाँ हो रही हैं। क्योंकि अज्ञान के अन्धकार में, ज्ञान के प्रकाश में देखो, एक ही रह जाएगा। वस्तुतः एक ही था और है। अजात प्रारम्भ करता है प्रकाश से, तत्त्व दृष्टि से। एक ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ है ही नहीं। अन्धकार, अविद्या पास

---

*अवकाशप्राप्त न्यायाधीश, इलाहाबाद उच्च न्यायालय।

फटकने ही न दो। प्रतीति होती है, प्रकाश की नीलिमा की। सूर्य की किरणों से बालू में जल की भी प्रतीति होती है, मगर कोई बुद्धिमान नीलिमा को या बालू में जल को सत्य नहीं मान बैठता है। प्रतीति अन्यथा होने पर भी सत्य सत्य ही रहता है।

तैत्तिरीय श्रुति में पञ्च कोषों का वर्णन है। 'सर्प स्थूल है, खाता-पीता है। उसमें अन्नमय कोष है। सर्प चलता भी है। यह उसका प्राणमय कोष है। वह क्रोध करता है, फुफकारता है। यह उसका मनोमय कोष हुआ। वह प्रसन्न भी होता है। बीन बजाने वाले के झूमते हुए मुँह की तरफ वह झूमता भी है। यह उसका विज्ञानमय कोष है। कभी वह आनन्द से लेटा हैं, सो-सा रहा है। यह उसका आनन्दमय कोष हुआ। कोष क्या है? तलवार की म्यान। आत्मा तलवार है, कोष उसकी म्यान हैं। यह समझाने की विधि है। मन्द बुद्धि हो तो भी समझ ले। विवर्त में कोषों का महत्त्व है, मगर केवल समझाने के लिये। धीरे-धीरे ले जाते हैं, ब्रह्म पर। 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा' सब की प्रतिष्ठा, सब का आधार ब्रह्म ही है।

अज्ञात ब्रह्म ही से चलता है, साँप है कहाँ। वहाँ तो रस्सी ही पड़ी है। फिर न अन्नमय कोष है, न प्राणमय, न मनोमय न विज्ञान-मय और न आनन्द मय। कोई भी कोष नहीं है। रस्सी ही रस्सी है, ब्रह्म ही ब्रह्म है।* प्रतीति हो रही है सर्प की पर है रस्सी। प्रतीति होवे, होती रहे। हुआ कुछ भी नहीं। ब्रह्म का ब्रह्म ही था, है और रहेगा। प्रतीति तथ्य का प्रमाण नहीं है। यदि प्रमाण होती तो स्वप्न का पसारा सत्य होता, आकाश की नीलिमा सत्य होती।

बच्चों की भाँति वैज्ञानिक को भी निलिमा दीखती है। पर वैज्ञानिक जानता है कि आकाश नीला नहीं हैं। नीलिमा केवल प्रतीति है, सत्य नहीं है। वेदान्त इसे मिथ्या कहता है। प्रतीति हो पर सत्य न हो इसलिये मिथ्या है।

आचार्य शंकर कहते हैं, "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या!" पहले ब्रह्म को सत्य कहा फिर जगत को मिथ्या, ऐसा क्यों? जगत् की भिन्न-भिन्न प्रतीतियाँ ही मिथ्या हैं। उन्हीं का नाम जगत् है। वास्तव में तो ब्रह्म ही सत्य है। उसी की मिथ्या प्रतीतियाँ हैं।

---

* स्वामी अखण्डानन्द के एक प्रवचन से।

ब्रह्म अज्ञात है क्योंकि प्रतीति से ही जन्म नहीं हो जाता। प्रतीति होती है और मिट जाती है, प्रकाश में विद्युत की भाँति। केवल विद्युत ही नहीं, सूर्य, चन्द्र और अग्नि का भीं भान होता है, पर वास्तव में, भान के पीछे तत्त्व क्या है ? ब्रह्म। उसी के प्रकाश से इन सब का भान होता है। कठ श्रुति कहती है, 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य मासा सर्वमिदं विभाति," उसी स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप ब्रह्म की ही दीप्ति से यह सब भासता है। उसके प्रकाश से ही यह सब प्रकाशित है। शव के लिये न सूर्य, न चन्द्र, न विद्युत का प्रकाश है। जब आत्मा का संयोग होता है तभी इन सबको देख सकते हो। तो फिर प्रकाश हुआ ज्ञान स्वरूप आत्मा का, ब्रह्म का। वही ब्रह्म सूर्य में है वही हमारी आँखों में है। सभी उसी ज्ञान स्वरूप एक बिम्ब के प्रतिबिम्ब हैं। यहाँ अजात और विवर्त का मिलन ज्ञात होता है।

अजात की सब से संक्षिप्त और युक्तियुक्त व्याख्या कारिका सहित माण्डूक्य उपनिषत् में है। माण्डूक्य सबसे छोटा उपनिषत् है। केवल बारह मन्त्रों का है। मगर कहा जाता है कि ज्ञान विज्ञान के प्रमुख अधिकारी को ज्ञान-विज्ञान के लिए वही पर्याप्त है जो केवल बारह मन्त्रों की श्रुति है। उसका पहला मन्त्र ही अजात का कितना अच्छा द्योतक है। "ओमित्यक्षरमिदं सर्वम्।" ॐ ऐसा अक्षर ही यह सब है। उसकी फिर व्याख्या है। "तस्योपव्याख्यानम्।" उपव्याख्या का अर्थ है बहुत निकट से, अन्तरतम् व्याख्या। भूत भवद् भविष्यद् सब ओङ्कार ही है। भवद् उसको कहते हैं जो अब है। इतना ही नहीं। जो तीनों कालों से परे है वह भी ॐ ही है। "यच्चान्यत्त्रि-कालातीतं तदप्योङ्कारमेव।"

दूसरे ही मन्त्र में जो कुछ शेष था वह भी कह दिया। "सर्वं ह्येत-द्ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म।" यह सब जो कुछ है ब्रह्म है। और कुछ है ही नहीं। यह आत्मा ब्रह्म है। 'अयमात्मा ब्रह्म।' यह एक महा-वाक्य है।

आगे के तीनों मन्त्रों में, अर्थात् तीसरे, चौथे, पाँचवें में, आत्मा के तीन पाद (जाग्रत् स्थानीय बहिष्प्रज्ञ, स्वप्न स्थानीय अन्तःप्रज्ञ और सुषुप्ति-स्थानीय प्राज्ञ) बता कर छठे मन्त्र में प्राज्ञ का सर्वेश्वर से मिलान किया, और सातवें में तुरीय पाद का विवरण किया। आगे

आठवें में आत्मा के तीन पादों और ॐ की तीन मात्राओं का सामञ्जस्य बताया। फिर तीन मन्त्रों में, नवें दसवें ग्यारहवें में, एक-एक पाद और एक-एक मात्रा का मिलान करके बताया। बारहवें में उपसंहार किया। कितना अच्छा उपसंहार है, आमात्रश्चतुर्थोऽव्यहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽत्मानं य एवं वेद।" अर्थात् अमात्र चौथा यानी तुरीय आत्मा ही है। वह अव्यवहार्य है। प्रपञ्चोपशम् है। शिव है, अद्वैत है। जो उसे इस प्रकार जानता है वह स्वयम् आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है।

अति संक्षिप्त ग्रन्थ का तात्पर्य ग्रहण करना बहुतों को कठिन होता है। इसलिये आचार्य गौड़पाद ने कारिका लिखी। कारिका और भाष्य में भेद है। कारिका मुख्य तात्पर्य को विस्तार से समझाती है। भाष्य सारे ग्रन्थ को समझाता है। माण्डूक्य इतनी संक्षिप्त श्रुति है कि यह प्रणाली चल निकलती है कि उसको गौणपादीय कारिका सहित ही पढ़ा जाता है।

श्रुति का प्रयोजन क्या है? आइये इस पर विचार करें। एक रोगी पुरुष है। रोग की निवृत्ति पर उसे स्वास्थ्यलाभ होता है। उसी प्रकार संसार के प्रपञ्च से दुखी पुरुष को उस प्रपञ्च की निवृत्ति से आरोग्य मिलता है। यह अद्वैतभाव, प्रपञ्च की निवृत्ति श्रुति का प्रयोजन है। "स्व" अर्थात् जब अपने में स्थित हो (स्थ हो) तब स्वस्थ है। द्वैत प्रपञ्च निवृत्त कैसे हो। वह अविद्याजनित है। अविद्या की निवृत्ति विद्या से ही हो सकती है। अन्धेरे को जैसे प्रकाश ही काट सकता है वैसे ही अविद्या को विद्या ही काट सकती है। वह विद्या पराविद्या है। उसे ब्रह्मविद्या भी कहते हैं वृहदारण्यक उपनिषत् में कहा "यत्र वान्यदिव स्यात्तप्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यत्विजानीयात्" जहाँ दूसरे के समान हो वहाँ कोई दूसरे को देख सकता है दूसरे को जान सकता है। उसके पहिले कहा था, "यत्र द्वैतमिव भवति" अर्थात् जहाँ द्वैत की तरह होता है वहीं सब परेशानियाँ हैं। वहीं दुःख है जहाँ 'यत्र वास्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्यते विजानीयात" अर्थात् जहाँ इसका सब आत्मा ही हो गया वहाँ किसके द्वारा किसको देखें, किसको जानें। ब्रह्मविद्या को यही एकत्व तथा अद्वैत समझना इष्ट है।

यही माण्डूक्य श्रुति का तात्पर्य है। इसी बात को समझाने के

लिये कारिका में चार प्रकरण हैं। पहिला आगम प्रकरण है। इसमें ओङ्कार का निर्माण करते हुए यह दिखलाया है कि श्रुति अद्वैत का और अजात का प्रतिपादन करती है। वैतथ्य प्रकरण में द्वैत के वैतथ्य, मिथ्यात्व को युक्तिपूर्वक समझाया गया। अद्वैत प्रकरण में यानी तीसरे प्रकरण में अद्वैत का सत्य होना युक्तिपूर्वक दिखाया है। चौथे अलातशान्ति प्रकरण में अद्वैत के विरोधी मतों का उन्हीं की युक्तियों से खण्डन किया और अद्वैत का प्रतिपादन किया।

गौड़पाद के ही शब्दों में—

"न कश्चिज्जायते जीवः संभवोऽस्य न विद्यते।
एतदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते।"

अर्थात् कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता क्योंकि इसकी संभावना ही नहीं है। यही उत्तम सत्य है कि कोई भी कुछ भी, उत्पन्न नहीं होता। इससे अधिक अज्ञात का और क्या वर्णन हो सकता है। कारिका सहित माण्डूक्य श्रूति का क्रमशः अध्ययन करके अजात को हम आगे समझेंगे।

अज्ञात का युक्तियुक्त विवेचन योगवाशिष्ट में भी है। कहा यह जाता है कि योगवाशिष्ट का प्रतिदिन अध्ययन ब्रह्मविद्या का सबसे सुगम अभ्यास है। ठीक भी है। ज्ञान का अर्थ है जानना। जैसे भी स्वरूप का ज्ञान हो वही एक अच्छा अभ्यास है। योगवाशिष्ट में अजात को, अद्वैत को, ब्रह्म और आत्मा के एकत्व को बड़े विस्तार से समझाया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि वशिष्ट ऋषि के प्रमुख श्रोता रामचन्द्र जी कितने उच्च अधिकारी थे। उनमें कहा गया तत्त्व सबकी समझ में नहीं आ सकता। मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सुनने वालों में केवल रामचन्द्र जी ही नहीं थे और भी कितने ही सभासद तथा विलासी देवता भी थे, हो सकता है कि रामचन्द्रजी के लिये तो तथ्य का निरूपण कुछ थोड़े शब्दों में पर्याप्त होता। वशिष्ट जी ने इतना विस्तृत विवेचन, युक्तियों दृष्टान्तों और आख्यायिकाओं सहित इसी लिए किया कि सर्वसाधारण को समझ में वह आ ही न जाय बल्कि बैठ जाय। योगवशिष्ट का भी अध्ययन हम आगे संक्षेप में करेंगे।

साथ ही हम दस प्रमुख उपनिषदों का संक्षेप में विचार करेंगे। वे हैं ईशावस्य, केन, कठ, मुण्डक, प्रश्न, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैतरेय,

छान्दोग्य और वृहदारण्यक। कुछ और उपनिषदों का जैसे कैवल्य. तेजविन्दु, ब्रह्मविन्दु, नारायण उपनिषद् आदि का भी हम क्रमश: संक्षेप में विचार करेंगे फिर श्रीमद्भगवद्गीता का, ब्रह्मसूत्र का भी संक्षेप में विचार करेंगे और देखेंगे कि इन ग्रन्थों में अजात और विवर्त का कैसा समन्वय है जो प्रतीत सर्वसाधारण को होती हैं उसी से प्रारम्भ करके कैसे उसी तथ्य पर पहुँचते हैं जिसे कारिका में अजात कहा है। कुछ अन्य गीताओं का भी जैसे अष्टावक्र गीता, अवधूत गीता, शिवगीता, अनुगीता और रामगीता का और रामायणों का जैसे अध्यात्म रामायण, जिसका रामगीता एक भाग है, रामचरितमानस और श्रीमद्भागवत पर भी संक्षेप में विचार करेंगे। इनमें से अवधूत गीता और अष्टावक्र गीता में भी अजात का बड़ा अच्छा निरूपण मिलता है। रामचरित मानस ऐसे भक्ति ग्रन्थ में भी कहीं कहीं अद्वैत की झलक मिलती है। जैसे, "जानत तुमहि तुमहि होइ जाई।" जो पहिले से नहीं था, केवल भूला हुआ नहीं था, वह केवल जानने से 'तुमहि" नहीं हो सकता। कौआ हंस को जानकर हंस नहीं हो सकता। श्रीमद्भावत मेरे विचार में श्रीकृष्ण लीला के बहाने अजात और विवर्त का वर्णन है, स्वामी अखण्डानन्द के शब्दों में कृष्ण भगवान का निरूपण छलछलाते ब्रह्म का निरूपण है। कैसा ब्रह्म ? ब्रह्म जो आप्तकाम भी है।

गौड़पाद ने कारिका में एक जगह सृष्टि के विषय में कई मतों का उल्लेख किया। कुछ लोग प्रभु की इच्छामात्र से ही सृष्टि कहते हैं कुछ लोग उसे भोग के लिए वताते हैं कुछ लोग उसे भगवान की क्रीड़ामात्र कहते हैं। मगर उनका अपना मत है "आप्तकामस्य का स्पृहा।" अर्थात् आप्तकाम की क्या इच्छा। यह तो ब्रह्म का स्वभाव ही है। स्वभाव क्या है ? तरह-तरह के रूपों में भान होना। ब्रह्म कोई जड़ पत्थर नहीं है, वह है सच्चिदानन्द। अस्ति, भाति प्रिय है।

स्वभाव का ही दूसरा नाम प्रकृति है। द्वैत में उसे ब्रह्म से अलग करके एक व्यक्तित्व दिया गया है। अद्वैत दृष्टि से सृष्टि भगवान की वैसी ही प्रकृति है जैसे अग्नि की उष्णता या वायु की स्पन्दता। सृष्टि दीखे तब भी ब्रह्म है न दीखे तब भी ब्रह्म है विना ब्रह्म तत्त्व के सृष्टि नहीं प्रतीत हो सकती। मगर सृष्टि को प्रतीति होने या न होने का ब्रह्म पर कोई असर नहीं पड़ता। इस दृष्टि से यदि भक्ति ग्रन्थ

श्रीमद्भागवत को पढ़ा जाय तो लीला के रूप में विवर्त के वर्णन की झलक मिलती है और श्रीकृष्ण भगवान हैं जो अजर और अमर हैं।

विवर्त का तात्पर्य अजात समझाने में ही मुझे मालूम होता है। तरह-तरह की रुचि देखने में आती है। सब यह नहीं चाहते कि उनके गुरु गौड़पाद की तरह उच्च पर्वत शिखर से नीचे उतरे ही नहीं। वे चाहते हैं कि प्रतीतियों में से होते हुए कोई उन्हें हाथ पकड़ कर पर्वत के शिखर पर ले चले। यहाँ आता है विवर्त का उपयोग। वह हमें प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर नहीं, अपरोक्ष की ओर ले जाता है। प्रत्यक्ष दृश्य होता है जो परिवर्तनशील होता है, सदा बदलता रहता है। परोक्ष अदृश्य होता है। अपरोक्ष इन दोनों से निराला है। वह अपना आपा है, द्रष्टा है दृश्य नहीं। केवल द्रष्टा भी नहीं है वह, वह तो जानने वाला ज्ञान स्वरूप है, जाना जाने वाला नहीं है। "विजातारमरे केन विजानीयात्"। जानने वाले को किससे जानें। वह जानने वाले हम ही हैं। शरीर रूप से नहीं, आत्मरूप से। हम से, आत्मा से, हमारे निकट और कोई नहीं है। किसी और के बारे में हमें भूल हो सकती है, अपने बारे में नहीं होनी चाहिये। हाँ हो भी सकती है। किसको ? एक शराबी को। वही कह सकता है कि मैं, मैं नहीं हूँ। लोग कहेंगे कि ऐसी भूल तो बहुतों को है। वह मदिरा से भी बढ़कर है। अपरोक्ष को हम भूल रहे हैं, और प्रत्यक्ष दृश्य को जो एक मायावी, जादूगर के तमाशे की तरह है उसे हम सच समझ रहे हैं।

यदि हम उपनिषदों में और श्रीमद्भगवद्गीता और भागवत के अन्य साधनों पर भी विचार करें तो यह मालूम होता है कि वे साधन भी हमको वहीं ले जाना चाहते हैं जहाँ कारिका का अस्पर्श योग। साधन कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। प्रश्न इतना ही है कि कौन किस सामर्थ्य वाले, रुचिवाले के लिये ठीक है। यह ठीक-ठीक गुरु ही बता सकता है अपनी समझ से चलने में तो त्रुटि हो सकती है। पर श्रुति एक बात हमें यह सिखाती है कि निराशा का कोई स्थान नहीं है, हम केवल भूले हुए हैं। माँ आनन्दमयी के शब्दों में "एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति। अरे वही तो है सब वही है।" निराशा हमारी सबसे बड़ी भूल होगी।

भूल भी स्वप्न की तरह है। जब तक मनुष्य सोता रहता है वह

नहीं जान सकता उसका स्वप्न कब प्रारम्भ हुआ। उसी प्रकार जब तक भूल है मनुष्य नहीं कह सकता उसकी भूल कब प्रारम्भ हुई। जब मनुष्य प्रबुद्ध होता है तब जानता है कि मैं भूला हुआ था, कब से स्वप्न देख रहा था। कब से भूला हुआ था, यह सब जानना अब उसके लिये व्यर्थ है। भूल की उत्पत्ति ढूढ़ना सबसे बड़ी भूल होगी। बस भूल का अन्त हो गया; काम बन गया। भूल को मिटाने के लिये ही, भूल से जगाने के लिये ही, प्रबुद्ध करने के लिये ही, श्रुति, स्मृति और आचार्य हैं। केवल पुस्तकें पढ़कर ही कोई ज्ञानवान् नहीं हो जाता। बालक भी अध्यापक की सहायता से ही दसवाँ, बारहवाँ, बी. ए., एम. ए. करता है तब कहीं विद्वान होता है। यहाँ तो भूल से उठना है। अपने को जानना है। अपने को तैयार करने में समय लगेगा। जानने का तो तब क्षण आएगा। वह क्षण कब आएगा, यह तैयारी पर, सामर्थ्य पर निर्भर करता है। उस तैयारी में श्रुति, स्मृति सहायक हैं पर गुरु का मार्गदर्शन, उसकी कृपा अत्यन्त आवश्यक है।

श्रुति, स्मृति और उसमें प्रतिपादित वेदान्त भारत की संसार को एक बड़ी देन है। खेद है, आश्चर्य है, कि हम ही उसको भूल गए हैं। उसी देन के सिद्धान्तों को, वेदान्तों को, ब्रह्मसूत्र और स्मृतियों इत्यादि को सरल से सरल भाषा में संक्षप में आपके सामने रखने का यह प्रयास है।

एक बात और है। बहुतों को और मुझे बहुत दिनों तक एक प्रश्न दुखी करता रहा जब ब्रह्म या परमात्मा आनन्द स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, तो फिर इस तरह का संसार जो दुःख का सागर मालूम होता है क्यों हुआ, कब हुआ, कैसे हुआ। आचार्यों का कहना है कि इसका उत्तर अजात और विवर्त है। इनको ठीक ठीक समझ लेने पर यह ससार दुःख का सागर नहीं रह जाता। प्रतीतियों का खेल हो जाता है। कैसे ? यह भी आगे फिर कभी हम देखेंगे और समझेंगे।

जय माँ

राम तजूँ मैं गुरु न बिसारूँ

डा० महेन्द्र नाथ राय*

प्रस्तुत पंक्तियाँ सन्त सहजोबाई की हैं। इनमें राम से अधिक 'गुरु' की महिमा का वखान हुआ है। कारण यह है कि गुरु से शिष्य का जितना हित सम्भव है उतना साक्षात परमात्मा से भी नहीं। हिन्दी भक्ति साहित्य में गुरु सत्व' का विशद विवेचन हुआ है। संतों एवं भक्तों ने भावाभिभूत होकर गुरु की अहेतुक कृपा का स्मरण किया है। महात्मा कबीरदास, धर्मदास, नानक, नामदेव, रैदास, सूरदास, तुलसीदास, मीरा सबने बड़े आदर के साथ हार्दिकतापूर्ण ढंग से गुरु कृपा का स्मरण किया है। मनुष्य का जन्म पाना यदि बहुत पुण्यों का प्रतिफलन है तो गुरु कृपा की उपलब्धि परमपिता की बहुत बड़ी दया है। इसीलिए सन्तों एवं महात्माओं ने गुरू की कृपा को ही साध्य बताया हैं। परमात्मा की दया तो साधन है।

संसार में विषय वासनाओं के तूफान उठते ही रहते हैं। इनके तरंगाघात से अपने पुरुषार्थ से नहीं बचा जा सकता। मन बड़ा चंचल और परवश बना देने वाला है। इसके षड्यन्त्र से नहीं उबरा जा सकता। ऐसी कठिन स्थिति में मन को नियन्त्रित और सुमार्ग की ओर उन्मुख करने की शक्ति गुरु स्मरण से ही सुलभ होती है। इसी लिए कहा गया है जो संसार में अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं उन्हें गुरु के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करना चाहिए—

अनुभूषित यो निज विश्रमं स गुरुवाद सरोरुहमाश्रयेत्।
तदनुसंसरणात् परमं पदं समरसीकरणं च न दूरतः॥

संसार में धन-दौलत, भरा-पूरा परिवार, यश-कीर्ति—सब तो किसी को मिलते नहीं। यदि मिल भी जायें और गुरु चरणों में प्रीति न हो तो इनका सार्थक उपभोग सम्भव नहीं है। इसीलिए जीवन को सार्थक और अर्थवान बनाने के लिए, अन्तर के नेत्र खोलने के लिए, सुन्दर व्यवहार और आचरण अपनाने के लिए किसी महापुरुष का दामन पकड़ा जाए यह आवश्यक है। संसार में जो भी प्रातःस्मरणीय हैं, वे किसी भी क्षेत्र के क्यों न हों—उनकी प्रेरणा और शक्ति के

* प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

स्रोत कोई न कोई महापुरुष रहे हैं। महर्षि रमण ने एक स्थान पर लिखा है – 'जब अवसर आता है तब आत्मा बाहर गुरु के रूप में प्रकट होता है, अन्यथा वह सदैव अन्तर है और आवश्यक कार्य कर रहा है। सूर्य का प्रकाश जड़ है। यह प्रकाश दृश्य पदार्थों को दृष्टि-गोचर कराता है तथा अन्धकार को दूर करता है। गुरु का प्रकाश अन्धकार को भी दृष्टिगोचर कराता है।" मनमुखी संसारी नहीं जानते कि उनके लिए क्या करणीय है और क्या अकरणीय उन्हें इसका भी पता नहीं कि उनका भला किसमें है। जिन्होंने अपने मन को गुरु के मन से मिला दिया है अर्थात् जिनकी अपनी कोई आशा-आकांक्षा नहीं, अपने गुरु की इच्छा और चाहना पर ही जो आश्रित हैं, उनसे भाग्यशाली संसार में कोई दूसरा नहीं है। ऐसे ही लोगों के चरणों को ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ चूमती हैं, गुणों के समूह अनायास स्वागत करते हैं, जीवन का सारा ताप-शाप नष्ट हो जाता है और मन-मुकुर की मैल धुल जाती है। गुरु-चरणों में झुकते ही सारा अहंकार ढुलक जाता है, शिष्य हलका हो जाता है। गुरु के कमलवत चरणों के स्मरण मात्र से हृदय प्रकाश से भर उठता है, अमंगल के मूल नष्ट हो जाते हैं। महात्माओं ने इसे जीवन में अनुभूत किया है। सारी यौगिक प्रक्रियाओं, तपस्याओं और साधनों से जो चीज हासिल नहीं होती, वह गुरु के मंगलमय स्वरूप को हृदय में बैठाने मात्र से सुलभ हो जाती है। सन्तों ने अपने हृदयोद्‌गार निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किए हैं :—

१— सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़िया, अनत दिखावनहार। (कबीर)

२— ज्ञान प्रकास्या, गुरु मिला, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ। (कबीर)

३— गुरु गुरु करत सदा सबु पाइया।
दीनदयाल भये किरपाला अपना नाम आपु जपाइआ।
(नानक)

४— गुरु बिनु ऐसी कौन करै।
भवसागर ते बूड़त राखे, दीपक हाथ धरै। (सूरदास)

५— जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं।
ते जनु सकल विभव बस करहीं॥ (तुलसी)

जैसे पतंगे दीपक पर गिर-गिरकर नष्ट होते हैं, वैसे ही संसार विषय-वासनाओं की आकर्षक, कमनीय छवि पर आसक्त होकर नष्ट हो रहा है। भवसिन्धु के पोत, हृदय के विमल विलोचन को उघाड़ने वाले, करुणा-सिन्धु, चिदाकाश में ज्ञान-चक्षु को उन्मीलित करने वाले महान गुरु की महिमा की अनुभूति भक्तों के हृदयागारों में अंट नहीं सकी है। अलख को लखाने वाले, सहज समाधि का मर्म समझाने वाले सद्‌गुरू की कृपा-दृष्टि जिन पर एक बार भी पड़ जाती है, वे निहाल हो जाते हैं। उनकीवृत्तियाँ अपने आप अन्तर्मुखी हो जाती हैं, मन लय हो जाता है, अहं चकनाचूर हो जाता है। ऐसों के लिए कुछ भी रहस्य नहीं होता। वे भावविह्वल होकर बिलखने लगते हैं :--

भाई कोई सदगुरू सन्त कहावै।
नैनन अलख लखावै।
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावै।
द्वार न रुधै, प्रवन न रोकै, नहिं भवखण्ड तजावै।
यह मन जाय जहाँ लग जबहीं, परमातम दरसावै।
काम करै निहकरम रहै जो ऐसी जुगुति बतावै।
सदा विलास त्रास नहिं तन में, भोग में जोग जगावै।
धरती पानी अकास पवन में, अधर मड़ैया छवावै।
सुन्न शिखर सार शिला पर, आसन अचल जमावै।
भीतर रहा सो बाहर देखै, दूजा दृष्टि न आवै। (कबीर)

संसार में माता, पिता और गुरु को सबसे आदरणीय और श्रद्धेय माना गया है। माता-पिता शरीर देते हैं और गुरु शरीर के धर्म का मर्म समझाते हैं, शिष्य को चेतना प्रदान करते हैं, सुषुप्ति से जागरण में ले जाते हैं, जीवन क्या है, जगत क्या है? इनके प्रति हमारा उत्तरदायित्व क्या है—इन सबका बोध कराते हैं। वे बोध स्वरूप हैं शान्ति के आगार हैं, भवभीति को नष्ट करने वाले हैं, अन्तर के अंधिकार और कालिमा का शमन करने वाले हैं। जिनके हृदयारविन्द में इनका निवास होता है, उसे संसार की ही नहीं अपवर्ग की भी सारी विभूतियाँ सहज ही सुलभ हो जाती हैं। वे प्रेम के सिन्धु हैं और उनके स्मरण मात्र से मानस प्रेम से आपूरित हो जाता है और तब मन अपनी कुटिलता त्याग देता है, मनोविकार

शान्त हो जाते हैं और शिष्य का जीवन सरल हो जाता है। गुरु के चरण कमलों की महिमा को शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। भोग, योग, कीर्ति, वैभव सबसे उपराम चित्त वाले अनासक्त, वीतराग महापुरुष का ध्यान भी यदि अपने गुरु के कमलवत चरणों में नहीं लगा तो सारी उपरामता व्यर्थ सिद्ध हो गई, ऐसी मान्यता स्वामी शंकराचार्य जी की है—

न भोगे न योगे न वा वाजिराजै
न कान्तामुखे नैव विन्तेषुचित्तम्।
मनश्चेन्न लग्नं गुरोरधिषदमें ततः किं,
ततः किं ततः किम् ततः किम्।

गुरु महान संत होते हैं। दूसरों के कल्याणार्थ महान कष्टों को सहजभाव से झेलते हैं। उनका सान्निध्य अत्यन्त मंगलमय है। उनके नेत्र सफल हैं जिन्होंने सन्तों के दर्शन किये हैं। उनका हृदय पवित्र है जिनमें किसी संत की छवि विराजमान है। वह पावन शरीर है जो किसी महापुरुष की सेवा में लगा है। उनके हृदय में ही भक्ति भाव का पदार्पण होता है जिन पर ये संत सद्गुरु कृपालु होते हैं। इनके दर्शन भगवान की महान कृपा से होते हैं। सन्तों का मिलना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। कोमल चित्त वाले दयालु संतों की सब पर कृपा होती है। उनमें भेद बुद्धि नहीं होती। ये गुणों के ग्राहक होते हैं। मद-मोह से मुक्त और अमानी होते हैं। इनकी छत्रछाया में जो भी बैठता है उसके प्राण जुड़ा जाते हैं, शुचि शान्ति से वह भर उठता है। इनकी विचित्र महिमा है। सन्त कबीर के शब्दों में--

जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
आसा त्रिसना सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो।
अवधू दुखिया, भूपति दुखिया, रंक दुखी विपरीती हो।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।

मन को जीत लेने वाले संत संसार में मंगलमूर्ति और मंगल विधायक होते हैं। एक महान सन्त ने लिखा है अगर ऐसे किसी सत्पुरुष का ख्याल जीवन में आ जाये तो निश्चय जानिये कि आपके बुरे विचार निश्चय ही हट जायेंगे। आप कभी-कभी अन्दाज कर लीजिए। जब आपको बुरे विचारों ने घेरा हो, बुरी वासनाओं ने

आपको तंग कर रखा हो, झुककर अपने गुरु को प्रणाम कर लीजिए, आप देखेंगे कि बादल फट जायेगा। कोई कठिन मुसीबत आपके सामने हो, या किसी दुःख में फँस गये हों, किन्हीं और विपदाओं में आपको बेचैनी आ रही हो, थोड़ी देर अपने गुरु का ध्यान कीजिए, अपने गुरु को प्रणाम कीजिए, आप देखेंगे कि उसी वक्त आपके अन्दर से कोई नई चीज पैदा हुई, नये विचार पैदा हुए। आपमें एक हिम्मत आई और आप इन दुःखों से बच जायेंगे। इसलिए अपने गुरु को हमेशा याद करें। अच्छे काम न कर सको, कोई बात नहीं, लेकिन अच्छे विचार अवश्य रखें। जिस समय आप अच्छे विचार लायेंगे भले ही इसके अनुसार काम न कर सकें, परन्तु इन अच्छे विचारों का फल अवश्य मिलेगा!"

संत सदगुरु परमात्मा के ही मूर्तिमान स्वरूप होते हैं। इनका स्मरण परमात्मा का ही स्मरण है, क्योंकि ये परमात्मा के साथ सोहबत रखने के कारण परमात्मा स्वरूप होते हैं। जो अनन्य प्रेम और पूर्ण श्रद्धा के साथ अपने गुरु से मिलकर एक हो जाते हैं वे ही इस अनुभूति से गुजरते हैं।

मालिक तेरी रजा रहे बस तू ही तू रहे।
बाकी ना मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।

(रामप्रसाद बिस्मिल)

मौलिकता की मदिरा जिन्होंने जी भरकर पी ली है, वे मानसिक शान्ति की खोज में भटक रहे हैं, अन्दर के खालीपन को भरने के लिए तड़प रहे हैं। जो लोग जीवन का अर्थ गहराइयों में जाकर समझना चाहते हैं, उन्हें किसी साहबेदिल में अपने लिए जगह बनानी होगी, उनकी इच्छा पर अपने को छोड़ना होगा। दुनिया में कोई भी पिता जितना स्नेह अपने बच्चे से करता है उसके कई गुना स्नेह गुरु अपने शिष्य से करते हैं। उनके शीलवान स्वभाव की किसी से भी तुलना नहीं की जा सकेगी। लोक और परलोक में गुरु के समान कोई हितकारी नहीं। जिनके शिर पर गुरु का हाथ होता है, उनका कभी भी अनिष्ट नहीं होता, कभी पतन नहीं होता। गुरु कृपा से शिष्य वह सब पाता है जिसकी उसे जरूरत है। वही पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं। गुरु की उपस्थिति ही जीवन को मूल्य प्रदान

करती है। यही समस्त सुरक्षा का स्रोत है। जो अपने अन्दर गुरु की उपस्थिति का बोध प्राप्त कर लेते हैं उनकी समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं। गुरु के अभाव में जीवन एक दुःखद भ्रान्ति है, अगर वे साथ हैं तो सब आनन्द ही आनन्द है। आदर्श बृत्ति है--केवल गुरु का होकर रहना। गोस्वामी जी ने इसीलिए लिखा है—

१—जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ वेदहुँ बड़भागी।

२—बंदऊँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।

३—जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं,
ते जनु सकल विभव बस करहीं।

४—गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन।

●

माँ की सेवा में लगे रहना अच्छी बात। मन को भगवान् के चरणों में लगाये रखने की चेष्टा करने पर अशान्ति की छाया शिथिल होने की आशा है।

—श्री माँ

Price List of various Publications and Articles available

with

SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY

PUBLICATIONS DIVISION

EZRA MANSIONS, 10, GOVT. PLACE EAST, CALCUTTA-700 069

Phone : 23-1211

A. *BOOKS* :

ENGLISH

1. Mother as Revealed to me —"*Bhaiji*"—*New Edition* — Rs. 10/- or $ 2 or £ 1.10
2. Mother as seen by Her Devotees — Rs. 10/- or $ 2 or £ 1.10
3. Sad Vani — Rs. 6/- or $ 1½ or £ 0.60
4. Matri Vani (Sayings)—New Edition Vol. I — Rs. 6/- or $ 1½ or £ 0.60
5. —Do— Vol. II — Rs. 10/- or $ 2.00 or £ 1.10
6. Words of Sri Anandamayi MA—*New Edition* — Rs. 15/- or $ 3.50 or £ 1.75
7. MA Anandamayi Lila —*Sri Hari Ram Joshi* — Rs. 20/- or $ 4 or £ 2.00
8. MA Anandamayi—A Mystic Sage—*Shyamananda Banerjee* — Rs. 20/- or $ 4 or £ 2.00
9. Anandamayi MA—As I have known HER—*N. Chowdhury* — Rs. 8/- or $ 1½ or £ 0.70
10. From the Life of Anandamayi MA—*Bithika Mukerji* Vol. I — Rs. 20/- or $ 4 or £ 2.00
11. -Do- Vol. II — Rs. 20/- or $ 4 or £ 2.00
12. Anandamayi MA's Inscrutable Kheyal—*Anil Ganguly* — Rs. 5/- or $ 1½ or £0.70
13. Life and Teachings of Sri Anandamayi Ma—*Dr. Alexander Lipski* Cloth bound — Rs. 30/- or $ 5 or £ 2.50
    -Do- Paper back New Ed. — Rs. 25/- or $ 4 or £ 2.00
14. Our Mother—Sri Sri Anandamayi—*Birthday Souvenir 1981* (with 8 nos. beautiful Photographs of Mother—coloured and in B & W) — Rs. 10/- or $ 2 or £ 1.10

15. Dwadash Vani—*S. N. Sopory* (both in English & Hindi) — Rs. 4/- or $ 1½ or £ 0.60

16. Anandamayi Ma—The Mother bliss incarnate—*Anil Ganguli* — Rs. 20/- or $ 4 or £ 2.00

17. Our Mother Sri Sri Anandamayi 1886—1982 (A concise introduction into the life of the Mother) — Rs. 1.50 or $ 0.25

HINDI

1. Matri Darshan—"*Bhaiji*" ... ... Rs. 5.00
2. Sad Vani ... ... Rs. 5.00
3. MA Anandamayi—*Dr. Pannalal* ... Rs. 5.00
4. Kirtan-Rasa-Swarupa ... ... Rs. 10.00
5. Stava-Sankirtan-Arati ... ... Rs. 2.00
6. Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda* (New Edition) ... Rs. 18.00
7. Matri Vani ... ... Rs. 2.50
8. Sri Sri MA Anandamayi—*Gurupriya Devi*
   Vols. 1, 2 and 4 to 20 each Vol. Rs. 8.00
   Vol. 3 (New edition) each Rs. 10.00

   N.B. Those purchasing 10 Vols. or more at a time of this series will be entitled to a special rebate of 10% in price.

9. Aao Suno MA Ki Kahani—*Sailesh Brahmachari* Rs. 7.00
10. Akhanda Maha-Yagna—*Gurupriya Devi* (With 31 rare photographs) ... Rs. 15.00
11. Dwadash Vani—*S. N. Sopory* (Both in English & Hindi) Rs. 4/- or $ 1½ or £ 0.60
12. Sri Sri Anandamayi Prasanga —*Amulya Dutta Gupta*
    Vol. I Rs. 10.00
    Vol. II Rs. 10.00
13. Upadeshamrit Sangraha Vol. I—Compiled by —*Kumar Bhattacharya* (New Edition) Rs. 10.00

BENGALI

1. Matri Darshan—"*Bhaiji*" ... Rs. 7.50
2. Sad Vani ... ... Rs. 2.00
3. Matri Vani ... ... Rs. 3.00
4. Kirtan-Rasa-Swarupa ... ... Rs. 10.00
5. Stava-Sankirtan-Arati (New Edition) ... Rs. 1.25
6. Namawali—*Ganga Samiran* ... ... Re. 1.00
7. Sri Sri Rama Gita
   —*Swami Narayanananda Tirtha* .. Rs. 3.50
8. Dikshiter Krishnapuja —Do— ... Rs. 1.50
9. Viveka Churamani—New Edition
   —*Swami Narayanananda Tirtha* ... Rs. 10.00
10. Santan Vatsala Sri Sri MA
    Anandamayi Vol. I —Do— ... Rs. 18.00
11. —Do— Vol. II —Do— ... Rs. 12.00
12. Siva Ratri-bratey Vishes —Do— ... Rs. 1.50
    Siva Puja Bidhi
13. Mahamahopadhyaya Doctor Gopinath
    Kaviraj Mahashayer Punya Jivaner
    Sankhipta Anudhyan —Do--- .. Rs. 2.00
14. Sono Bali Mayer Katha (New Edition)
    —*Sailesh Brahmachari* ... Rs. 5.00
15. Bhaijir Dwadash Vani (New edition) ... Re. 1.00
16. Mayer Lila Katha—*N. Chowdhury* .. Rs. 5.00
17. Sri Sri Muktananda Giri Maharaj
    —*Sri Anil Chandra Gangopadhyaya* ... Rs 1.50
18. Amar Vani—compiled by *Br. Virjananda*
    (New edition) ... Rs. 20.00

19. Sri Sri MA Anandamayi—*Gurupriya Devi*
    Vols. 2, 3 and 7 (Uttarardha) to 16 each Vol. ... Rs. 8.00
    Vols. 1, 4, 5 and 6 (New Ed.) each Vol. ... Rs. 12.00
    Vol. 7 (Purvardha) -do- each Vol. ... Rs. 15.00
    Vol. 17 -do- each Vol. ... Rs. 8.00

    N.B. Those purchasing 10 Vols. or more of this series at a time will be entitled to a special rebate of 10% in price.

20. Akhanda Maha-Yagna—*Gurupriya Devi* (with 31 rare photographs) ... Rs. 15.00

21. Sri Sri Anandamayi Prasanga
    Amulya Dutta Gupta (New edition) Vol.—I Rs. 10.00
    Vol.—II Rs. 10.00

22. Siva-Sambhu Mahadeva—Sivananda Rs. 5.00

23. Upadeshamrita-Sangraha—compiled by *Kumar Bhattacharyya*—Vol. I (New Ed.) ... Rs. 7.50
    — Do— compiled by *Sivananda* Vol. II (New Ed.) ... Rs. 8.00

24. Ma Anandamoyee—*Dr. Vivekranjan Bhattacharya* ... Rs. 12.00

25. Matri-Lila-Darshan —*Doctor D. Mukhopadhyaya* ... Rs. 16.00

26 Bangmayi MA—(MA's Words) ... Rs. 5.00

GUJRATI

1. MA Anandamayi-Ke-Sannidhyame
   —*Swami Bhagavatananda* Vol. I each Rs. 8.00
   Vol. II (out of stock)
   Vol. III each Rs. 10.00
2. Bhava Murti Sri Sri MA Anandamayi
   Chaitanya Ben Divetia each Rs. 2.50
3. Matri Vani Vol. II each Rs. 5.00

ARABIC-SINDHI

1. Matri Vani each Rs. 4.00

DEV-NAGRI

1. Matri Vani each Rs. 4.00

ORIYA

1. Matri Vani each Re. 1.00

PUBLICATIONS IN FOREIGN LANGUAGES

FRENCH

1. L'enseignement de Ma Anandamoyi — Fr. F. 20/-
   Traduit par Josette Herbert
   Preface de Jean et Josette Herbert
   Editions Albin Michel, Paris 14,
   Paper back, 380 pp.
2. Aux Sources de la Joie (Sad Vāni) — (Current price to be ascertained)
   Traduction et Preface de Jean Herbert
   Editions Lucioles, Quebec, Canada
   Paper back, 75 pp.
3. Satsang avec Ma — Fr. F. 5/-
   Questions—Résponses
   avec Sri Ma Anandamayi
   ā Nadiad.
   Traduit par Yann et Anne-Marie Le Boucher
   Editions Jacques Alaphilippe,
   Le Rial, 22430 Erquy, France
   Paper back, 43 pp.
4. Visages de Ma Anandamayi — F. F. 65/-
   Bharati Dhingra
   Editions du Cerf.
   29, bd Latour—Maubourg, Paris.
   Paper back, 172 p.p.
5. Ashrams. Grand Maitres de l'Inde — (Current price to be ascertained)
   Arnaud Desjardins
   "Spiritualités Vivantes"
   Editions Albin Michel, Paris 1982

GERMAN

Worte der Gluckseligen Mutter — DM 34/-
Anandamayi Ma
Auswahl u. Ubersetzung :
Doris Schang.
Mangalam Verlag,
7894 Stuehlingen Seegarten 12
West Germany
Cloth bound, 326 pp.

ITALIAN

"Parole di Sri Anandamayi Ma' — Lire 9000/-
Editrice Vidyananda
Via E-Bellia 76
95047 Paterno (CT)

QUARTERLY JOURNALS

ANANDA VARTA—Published simultaneously in three languages—English, Bengali & Hindi (January, April, July & October). It presents the divine life and teachings of Sri Sri Anandamayi MA and various aspects of Universal Dharma.

LIFE MEMBERSHIP FEE—(For Inland only)
in each language — Rs. 250/-

ANNUAL SUBSCRIPTION

In India—(in each language) — Rs. 15/- only.

Foreign (including Europe & America)

By Sea Mail ... $ 5.00 or £ 2.50 or Rs. 40/-

By Air Mail ... $ 10.00 or £ 5.00 or Rs. 80/-

Single Copy—Rs. 4/50 or $ 1½ or £ 0.70 each

The payment should be made in the name of "SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY" (PUBLICATIONS DIVISION) by M.O. or Bank Draft only on any Calcutta Bank and not by cheque to avoid Bank-Charges and unnecessary delay in encashment.

B. *PHOTOS & LOCKETS*:
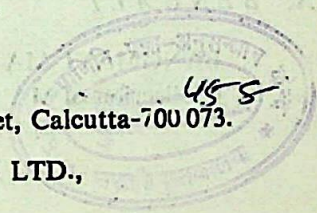
1. PHOTOS, according to sizes and quality ranging from Rs. 1.50 to Rs 60.00 each.
2. LOCKETS, according to sizes and quality ranging from Rs. 2.00 to Rs. 12.00 each.
3. Steel Chains for the Lockets— Re. 0.75 each.

C. *L. P. RECORDS AND CASSETTES*:

1. 46-Min. L.P. record of 16 nos. Devotional Songs—sung in Bengali by Mother. Rs. 55/- or $ 8.00 or £ 3.50
2. L-60 type Cassette of 23 Devotional Songs—sung by Mother. Rs. 65/- or $ 9.00 or £ 4.00

All the books & materials can be had of :

1. PUBLICATIONS DIVISION,
   Shree Shree Anandamayee Charitable Society,
   31, Ezra Mansions, 10, Govt. Place East,
   Calcutta-700 069. Phone : 23-1211

2. HEAD OFFICE OF SHREE SHREE ANANDAMAYEE CHARITABLE SOCIETY
   Shivala, Varanasi-221001, U. P. Phone : 53592

3. SHREE SHREE MA ANANDAMAYEE ASHRAMS—Selected Centres

4. MAHESH LIBRARY,
   Book Sellers & Publishers,
   2/1, Shyama Charan Dey Street, Calcutta-700 073.

5. M/S. GLOBE LIBRARY (P) LTD.,
   Book Sellers & Publishers,
   2, Shyama Charan Dey Street, Calcutta-700 073.
   Phone : 34-3660

N B.—Books and other materials required to be exported are payable in prices indicated in foreign currencies only.

OUR BANKERS AT CALCUTTA

1. AMERICAN EXPRESS INTERNATIONAL BANKING CORPORATION
   21, Old Court House Street,
   Post Box 2311, Calcutta-700 001.

2. UNITED BANK OF INDIA
   16, Old Court House Street,
   Calcutta-700 001.
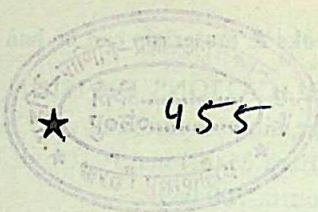
RECENT ADDITIONS to our list of Publications

A. ***BENGALI***

1. BANGMAYI MA—
(Collection of MA's Words) each Rs. 5/-

B. ***ENGLISH***

1. ANANDAMAYI MA :
The mother, bliss-incarnate
—*Sri Anil Ch. Ganguli*
each Rs. 20/- or $ 4.00 or £ 2.00

2. SRI SRI ANANDAMAYI MA
1896—1982
(A concise introduction into the life of Mother)

BRANCH-CENTRES

1. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhadaini, Varanasi, U. P. (Phone : 53530) Tele : "Mataji"
2. Shree Shree Ma Anandamayee Kanyapeeth, Bhadaini, Varanasi, U.P.
3. Mata Anandamayee Hospital, Shivala, Varanasi, U.P. (Phone : 52591 & 52491)
4. Anandamayee Karuna, Bhadaini, Varanasi, U. P.
5. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Dist. Mathura, Vrindaban-281120, U. P. (Phone : 94)
6. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Ashtabhuja Hill, Vindhyachal, U. P.
7. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kishenpur, P.O. Rajpur, Dehradun, U. P. (Phone : Rajpur 271)
8. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalyanvan, 176, Rajpur Road, P.O. Rajpur, Dehradun, U. P., Pin : 248009.
9. Shree Shree Ma Anandamayee Sadhan Ashram, 47/A, Jakhan, Dehradun, U. P. (Phone : 4038)
10. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Raipur Ordnance Factory, Dehradun, U. P.
11. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Kankhal (Hardwar), Dist. Saharanpur, U. P. (Phone : 575), Pin : 249408
12. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kali Mandir, P.O. Uttar Kashi, U. P.
13. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Patal Devi, Almora, U. P. Pin : 263602
14. Shree Shree Ma Anandamayee Vidyapeeth, Patal Devi, Almora, U.P.
15. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Puran Mandir, P.O. Naimisharanya, Dist. Sitapur-261402, U. P.
16. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Kalkaji, New Delhi-19 (Phone : 631378)
17. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Agarpara, P.O. Kamarhati, Calcutta-58 (Phone : 581208)
18. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Chandipur-Tarapeeth, Dist. Birbhum, West Bengal
19. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Rajgir, Nalanda, Bihar Pin : 803116
20. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Main Road, Ranchi, Bihar
21. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Swargadwar, Puri, Orissa
22. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Bhimpura, P.O. Chandod, Baroda, Gujrat, Pin : 391105
23. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Ganesh Khind Road, Poona-7
24. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Dhaul-china, Almora, U. P.
25. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, Siddheswari, P.O. Ramna, Dacca, Bangladesh
26. Anandamayee Karikari Vidya Niketan, P.O. & Vill. Kheora, Dist. Comilla, Bangladesh
27. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Agartala, West Tripura
28. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Bairagarh, Bhupal, Madhya Pradesh
29. Shree Shree Ma Anandamayee Ashram, P.O. Kedarnath, Chamoli, Tehri-Garwal, Uttar Pradesh.